खण्ड 2
मध्यकालीन ग्रंथों का संक्षिप्त अध्ययन
(भाग – 1)

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 1 पार्श्वदेव कृत संगीत समयसार ग्रन्थ का विवेचन

सूची पत्र

1.0 भूमिका

1.1 पाठ का उद्देश्य

1.2 आचार्य पार्श्वदेव कृत "संगीत समयसार" ग्रंथ

1.3 पार्श्वदेव की स्थिति और काल

1.4 संगीत समयसार

1.5 संगीत के संदर्भ में संगीत समयसार का विश्लेषण

- 1.5.1 राग जननी जातियां
- 1.5.2 स्वर ग्राम
- 1.5.3 स्वरों की निष्पत्ति
- 1.5.4 संवाद
- 1.5.5 ग्रामीय स्वर का लक्षण
- 1.5.6 स्थान और मूर्च्छना
- 1.5.7 मेल पद्धति बनाम प्राचीन ग्राम पद्धति

1.6 अंश स्वर और रस

1.7 सारांश

1.8 स्व मूल्यांकन प्रश्न

1.0 भूमिका

जैन मुनियों ने संस्कृत कथा साहित्य के क्षेत्र में भी महान योगदान दिया है। उन्होंने धार्मिक सिद्धांत एवं नैतिक उपदेश कथाओं को रोचक रूप कहानियों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। विद्वान पंडित बलदेव उपाध्याय ने लिखा है कि 'कहानी लिखने में जैनियों को शायद ही कोई पराजित कर सके। उनके यहां इसका एक विशाल भव्य साहित्य है। 'पंचतंत्र' स्वयं विस्मयावह कहानियों का एक सामान्य संग्रह मात्र ना होकर साहित्य की दृष्टि से एक नितांत उपादेय ग्रंथ है, जिसका प्रभाव भारत के कथा साहित्य के ऊपर तो पड़ा ही है साथ में पश्चिमी जगत के साहित्य पर भी इसका विशेष रूप से पड़ा है। डॉ श्रीमती हेम भटनागर ने 'श्रंगार युग में संगीत काव्य' विषय पर अनुसंधान करते हुए अपने शोध ग्रंथ में निष्कर्ष रूप में जैन रागमालाओं की चर्चा की है। उनके ग्रंथों का अवलोकन करने से विदित होता है कि जैन मुनिवर संगीत का ज्ञान भी अत्यधिक मात्रा में रखते थे। जैन मुनियों में राग मालाएं लिखने का बड़ा प्रचार था। वे अपने किसी तीर्थकर का यश वर्णन करते समय राग तथा रागिनियों में बांधकर काव्य रचना करते थे।

1.1 पाठ का उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद विद्यार्थी

- दिगंबर जैन आचार्य पार्श्वदेव के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंग।
- आचार्य पार्श्वदेव कृत संगीत ग्रंथ "संगीतसमयसार" के बारे में ज्ञान प्राप्त करेंगे।

1.2 आचार्य पार्श्वदेव कृत "संगीत समयसार" ग्रंथ

जैन आचार्य पार्श्वदेव कृत यह प्राचीन ग्रंथ "संगीत समयसार", भारतीय संगीत शास्त्र के इतिहास की एक चर्चित, किंतु महत्वपूर्ण कड़ी है। संगीत समयसार इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन युग में जैन साधुओं को विविध कलाओं का विशिष्ट ज्ञान था और उन्होंने इनका चिंतन, मनन एवं अवलोकन करने के उपरांत मौलिक विश्लेषण किया था। आचार्य पार्श्वदेव की इस कृति से यह स्पष्ट हो जाता है कि संगीत शास्त्र के गुण एवं सूक्ष्म सिद्धांतों एवं उनके प्रयोग का रचनाकार को विशिष्ट ज्ञान तो था ही, इसके साथ ही उन्हें काव्यशास्त्र एवं नाट्य शास्त्र का परिज्ञान भी था। आचार्य पार्श्वदेव ने भी ब्रह्मा विष्णु महेश्वर को नादात्मक कहा है। इस विषय में भी वे मतंग मुनि के अनुवर्ती है -

नादात्मानस्त्रयो देवा ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः

सं० स० सार, अध्याय-दो श्लोक 18

जैनों के 'ठानाणगसुत्त, रायापसेणीय, अनुयोगद्वारसुत्त' इत्यादि ग्रंथों में संगीत संबंधी प्रभूत सामग्री उपलब्ध होती है जिस से यह लगता है कि जैन आचार्यों के द्वारा संगीत शास्त्र पर भी स्वतंत्र ग्रंथ अवश्य लिखे गए होंगे। परंतु वर्तमान स्थिति में उपलब्ध जैन आचार्यों के द्वारा लिखित संगीत संबंधी लक्षण ग्रंथों में "संगीत समयसार" ही प्राचीनतम ग्रंथ है। संगीत रत्नाकर के टीकाकार "महाराज सिंहभूपाल" (14वीं शताब्दी) ने भी संगीत समयसार से अनेक उदाहरण दिए है।

यह बात भी सुप्रसिद्ध है कि शुद्ध चित्त युक्त, साधक एवं शांतचित्त प्राचीन जैन आचार्यों ने भी संगीत को गुरु-शिष्य परंपरा के अनुसार शिक्षा का विषय ही माना था। उनमें से एक आचार्य पार्श्वदेव ने कुछ ऐसे तत्वों की भी व्याख्या की है, जो अन्य आचार्यों के द्वारा नहीं कही गई है।

1.3 पार्श्वदेव की स्थिति और काल

आचार्य बृहस्पति द्वारा सन 1977 में की गई संगीत समयसार ग्रंथ के हिन्दी अनुवाद के अनुसार इस ग्रंथ के प्रणेता आचार्य पार्श्वदेव के पिता का नाम 'आदिदेव' और माता का नाम 'गौरी' था तथा उनकी उपाधि संगीताकर थी। आचार्य पार्श्वदेव 'महादेवार्य' के शिष्य थे और दिगंबर जैन आचार्य थे। संगीत समयसार में उन्होंने अनेक स्थानों पर अपने आप को 'दिगंबरसूरिणा' कह कर संबोधित किया है जिस के द्वारा उन्होंने अपने धर्म और मत की ओर संकेत किया है।

आचार्य बृहस्पति के अनुसार पार्श्वदेव का समय तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध का रहा होगा क्यूंकी उन्होंने अपने ग्रंथ मे शार्ङ्गदेव द्वारा वर्णित तारावली आदि प्रबंधों के बारे में असहमति

प्रकट की है। और उसके बाद चौदहवीं शताब्दी में सिंह भूपाल द्वारा ने अपने संगीत रत्नाकर के टीका में यत्र तत्र पार्श्वदेव का उल्लेख करते हुए संगीत समयसार के उद्धरण दिए है। जिस से यह सिद्ध होता है की पार्श्वदेव का समय शारंगदेव के बाद और सिंह भूपाल से पहले का रहा होगा।

पार्श्वदेव ने पूर्व आचार्यों में भोज, सोमेश्वर और जगदेकमल्ल जैसे अन्य धर्म के आचार्यों का केवल सादर उल्लेख ही नहीं किया, अपितु महाराज जगदेकमल्ल के ग्रंथ 'संगीत चूड़ामणि' से पर्याप्त सामग्री को यथावत उद्धृत भी की है। महाराज जगदेकमल्ल ने दक्षिण भारत में वर्तमान के हैदराबाद शहर के निकट 'कल्याणी' नामक स्थान पर 1134 ईस्वी से 1145 ईस्वी तक राज्य किया जो उनके वंश के राज्य की राजधानी थी। आचार्य पार्श्वदेव के द्वारा संगीत चूड़ामणि की सामग्री का ग्रहण जहां एक और यह सिद्ध करता है कि वह महाराज जगदेकमल्ल के संगीत संप्रदाय में निष्ठा रखते थे, वहीं उनके द्वारा ठाय प्रकरण में 'मोड़ामोड़ि, गाणा चे ठाय, चित्ता चे ठाय, गीता चे ठाय, जोड़िय चे ठाय, शरीरा चे ठाय' - जैसी लोक प्रचलित परिभाषाओं के प्रयोग, इस तथ्य की ओर इंगित करते हैं कि वह किसी मराठी भाषी स्थान के रहने वाले थे। इसके साथ इससे यह भी विदित होता है कि 'संगीत समयसार' की रचना के समय महाराज जगदेकमल्ल कृत संगीत चूड़ामणि संगीत संप्रदाय में प्रतिष्ठित हो चुका था।

चौदहवीं शती में 'संगीत रत्नाकर' के टीकाकार 'सिंह भूपाल' ने संगीत रत्नाकर की टीका में पार्श्वदेव का उल्लेख करते हुए संगीत समयसार के उद्धरण यत्र तत्र दिए है। यह स्थिति स्पष्ट करती है कि पार्श्वदेव ने कुछ ऐसी बातें भी लिखी हैं जो शारंगदेव जैसे महान आचार्य के द्वारा भी उल्लेख नहीं किया गया होगा। इस बात से संगीत समयसार और उसके प्रणेता के महत्व का परिचय मिलता है।

आचार्य पार्श्वदेव ने स्वयं को 'नाना राजसभाओं में स्थित रसिकों के द्वारा स्तुत्य' कहा है। जो यह सिद्ध करता है कि वह देश देशांतर में घूमे हुए अनुभवी आचार्य थे।

1.4 संगीत समयसार

आचार्य पार्श्वदेव ने अपने ग्रंथ संगीत समयसार के **प्रथम अध्याय** में भरत, मतंग, दत्तिल, कोहल, आंजनेय, तुम्बुरू, भोज, कश्यप और याष्टिक जैसे सभी संगीत के महाविभूतियों के मत को सादर स्वीकार करते हुए उन्हे प्रणाम किया है। उन्होने संगीत के दो प्रकारों (मार्गी और देशी) के बारे में लक्षणों सहित वर्णन किया है। उन्होंने बताया है कि मार्ग दो प्रकार का है 'जातिगत' और 'मद्र'। उन्होंने स्थान, श्रुति, ग्राम, तान सहित मूर्च्छनाएं, राग, मद्र इत्यादि गीतों का स्वर संबंधी विषय तथा उत्पत्ति सहित विवरण दिया है। उन्होंने 'स्थान' के लक्षण के बारे में बताते हुए कहा है कि स्वरों की उत्पत्ति का स्थान होने के कारण यह 'स्थान' कहलाता है। यह स्थान तीन है- हृदय, कंठ और शिर। इन तीनों में से प्रत्येक स्थान से 22 प्रकार के ध्वनियाँ उत्पन्न होतीं है। हृदय में 22 प्रकार की मन्द्र ध्वनि उत्पन्न होती है और यह नाद ऊपर की ओर होता है। मन्द्र का द्विगुण नाद कंठ में उत्पन्न होने पर 'मध्य' कहलाता है और इसी क्रम में मध्य का द्विगुण नाद शिर में उत्पन्न होने पर 'तार' कहलाता है। अंतर स्वरों में विद्यमान श्रुतियां 'अंतरश्रुति' मानी गई है। उन्होंने वीणा में श्रुतियों के बारे में बताते हुए मन्द्र सप्तक की 22, मध्य सप्तक की 22 और तार सप्तक की 22 श्रुतियों के बारे में बताया है। इसके बाद उन्होंने श्रुति के संबंध में मतंग ऋषि के ही 5 मत बताएं है। इसके अलावा उन्होने तीनों सप्तकों की श्रुतियों के पूरे नाम, स्वर एवं श्रुति का अंतर, स्वर, नाद, व्याकरण के स्वर तथा व्यंजनों का सांगीतिक

स्वरों से संबंध एवं भेद, ध्वनि, स्वरों की निरूक्ति, स्वरों की जातियां, मूर्च्छना तथा उनकी निष्पति के षड़ज एवं मध्यम ग्राम, मूर्च्छना के प्रकार (सप्त स्वर एवं द्वादश स्वर), तान तथा उसके प्रकार, राग तथा उसके प्रकार (शुद्ध राग, भिन्न राग, गौड़ राग), ग्राम राग, गीत के बारे में भी विस्तार पूर्वक बताया है। तानों के संबंध में उन्होने मतंग इत्यादि मनीषियों की तरह यह माना है कि 'तानों' के यज्ञात्मक विशिष्ट नाम है और 'अग्निष्टोम' नामक तान का गान करने वाले को 'अग्निष्टोम' याग करने का पुण्य मिलता है। आचार्य पार्श्वदेव ने मतंग के इस दृष्टिकोण का उदारतापूर्वक उल्लेख अपने प्रथम अध्याय में किया है।

दूसरे अध्याय में उन्होंने देशी की परिभाषा देते हुए कहा है कि अपने अपने स्थान और देश में नारियों, बच्चों ग्वालों और नरेशों के द्वारा अपनी इच्छा के अनुसार अनुराग पूर्वक जो गाया जाता है वह देशी है। जो गीत, वाद्य और नृत्य विभिन्न राजाओं के देश में लोगों की रूचि के अनुसार व्यवहार में आता है वह देशी है। उन्होने देशी के राग लक्षणों के बारे में बताते हुए देशी के दो भेद बताएं है - 'शुद्ध और सालग'। इसके बाद उन्होने त्रिविध स्वर, नाद की उत्पत्ति तथा मतंग के बताए हुए नाद के पाँच प्रकार, ध्वनि तथा उसके भेदों की मानव शरीर के संदर्भ में व्याख्या करते हुए विस्तार पूर्वक चर्चा की है। इसके बाद उन्होने आलप्ति तथा उसके भेद (रागालप्ति एवं रूपकालप्ति), वर्ण, क्रम, आवृति के नियम, ग्रह, न्यास, अपन्यास, लय, स्थायी, आरोही, अवरोही, संचारी, अलंकार, गमक (उसके विभिन्न प्रकार तथा स्थान) के बारे में चर्चा की है। आचार्य पार्श्वदेव ने देशी के कुछ ऐसे अंगों का भी वर्णन किया है जो इनसे पहले किसी ने नहीं किया था।

तीसरे अध्याय में पार्श्वदेव ने राग, राग का आधार, वादी, संवादी, अनुवादी तथा विवादी स्वरों, ग्रह स्वर, न्यास स्वर, राग का सप्तक (कौन सा राग किस सप्तक में खिलता है), आलप्ति का प्रथम स्वर स्थान, राग का चलन तथा विस्तार, रागवाचक स्वर समूह, राग की शुद्धता, राग की उत्पत्ति के कारण, ठाय तथा ठाय के लक्षण (गाणाचेठाय, चित्ताचेठाय, गीताचेठाय, जोड़ियचेठाय, शरीराचेठाय, नादाचेठाय), आधारतानों से उत्पन्न राग, काकु तथा इसके विभिन्न प्रकार (रागकाकु, क्षेत्रकाकु, यन्त्रकाकु, स्वरोद्भवकाकु, देशकाकु, अन्यरागजकाकु) तथा उनकी परिभाषा इत्यादि का संपूर्ण विवेचन इस अध्याय में किया है।

चतुर्थ अध्याय में उन्होंने प्रबंध के लिए उपयुक्त अनेक राग, औड़व, षाड़व तथा संपूर्ण के भेद तथा रागांग के बारे में बताया है। रागांग के साथ उन्होंने भाषांग, उपांग एवं क्रियांग के बारे में भी विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। स्वर व्यवस्था के अनुरूप 12 संपूर्ण रागांग, 4 औड़व तथा षाड़व रागांग, 18 संपूर्ण उपांगराग, 7 षाड़व उपांगराग, 6 औड़व उपांगराग, 3 क्रियांग राग, 9 भाषांग राग, उस समय के प्रचलित रागों के जन्म, अंग, ग्रह, न्यास तथा उनकी मूर्च्छना, उनके रस, उनमें प्रयुक्त गमक, विभिन्न ग्रंथकारों का उन रागों के संदर्भ में वर्णन करते हुए उनके बारे में विस्तार से बताया है।

पंचम अध्याय में उन्होने निबद्ध प्रबंध, इसके 3 नाम (प्रबंध, रूपक और वस्तु) उसके अलावा 4 धातुओं और 6 अंगों से प्रबंध होने के कारण इसे प्रबंध कहा जाता है, यह बताया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने बताया है कि राग के आरोपण हेतू होने के कारण इसे 'रूपक' तथा चार धातु और 6 स्वरअंगों का आवास स्थान होने के कारण इसे 'वस्तु' कहा जाता है। इसके बाद उन्होंने प्रबंध में मेलापक, ध्रुव और आभोग, गीतज्ञों के तीन प्रकार (अनिर्युक्त, निर्युक्त, उभयात्मक) तथा उनके विस्तार, गद्य तथा उसमें प्रयुक्त 6 प्रकार की गति (द्रुत, विलम्बित, मध्य,

द्रुतविलम्ब, द्रुतमध्य तथा मध्यविलम्बित) एवं उनके लक्षण, 6 प्रकार के गद्यों में 6 प्रकार की गति के कारण उनके 36 भेद, देशी संगीत में निहित सालग के सूड़ प्रबंध (ध्रुव, मण्ठ, प्रतिमण्ठ, लम्भक, अड्डताली, रासक और एकताली), गीतों के समय, स्थान एवं प्रकारों के बारे में इसमें बताया है।

षष्ठ अध्याय में आचार्य पार्श्वदेव ने वाद्यों के बारे में विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। वाद्ययों के चार प्रकार बताते हुए कहा है कि 'तंत्रीयुक्त' तत् वाद्य, चर्म आच्छादित वाद्य 'अवनद्ध' कांसे का बना हुआ 'घन' और छिद्र युक्त वाद्य 'सुषीर' कहलाता है। वीणा, अलावणी, लघुकिन्नरी, बृहत्किन्नरी, शकनी इत्यादि तत् वाद्य, पटह, हुडुक्का, ढ़क्का, मृदंग, करटा इत्यादि अवनद्ध वाद्य, ताल, कांस्यताल, क्षुद्रघण्टिका, पट्ट और शुक्ति घन वाद्य तथा वंश, महुरी, शंख, श्रृंग, बांसुरी इत्यादि अनेक सुषिर वाद्य है। क्रियाभेद, वाद्यभेद, व्याप्तिभेद, वीणाभेद तथा तन्त्रीसंख्याभेद के कारण वाद्यों के अन्य प्रकार भी हो सकते है। घन वाद्यों में वे झांझ तथा मंजीरे की जोड़ी को 'शक्ति' और 'शिव' कहते है।

उन्होने समस्त वीणओं में 'एकतन्त्री' वीणा को प्रमुख माना है। सभी वीणाओं की वादन कला, मेलन विधि, स्वर निष्पत्ति विधि, उंगलियों का वाद्य पर स्थान, रागों के अनुसार उंगली नियम, वाद्यों के भेद, अन्य समस्त अवनद्ध, घन तथा सुषिर वाद्यों के वादन से लेकर मेलन विधि, बायीं पुड़ी, दायीं पुड़ी, अवनद्ध वाद्यों के बोल, गीतवादन के पाँच अंग तथा पाँच आश्रयअंग के बारे में विस्तार से बताया है। इसके साथ ही इस अध्याय में उन्होंने ताल एवं ताल के अनेक प्रकारों, मात्राओं, बोल एवं वेदों का उदाहरण देते हुए उनके बारे में भी वर्णन किया है।

अगले अध्याय में उन्होंने नृत्य तथा इसके प्रकारों के बारे में वर्णन किया है। उनका मानना है कि नृत्य वाक्, अंग, आहार्य और सत्व से उत्पन तथा ताल, भाव और लय के अधीन है। मानव शरीर द्वारा नृत्य करने के कारण शरीर के हर एक अंग का विश्लेषण तथा उसके भेद, अभिनय तथा उसके भेदों के बारे में पूर्व ग्रंथों का वर्णन करते हुए बताया है। नर्तकों के बारे में एक जगह कहा है कि "जिधर हस्त उधर दृष्टि, जिधर दृष्टि उधर मन, जिधर मन उधर भाव तथा जिधर भाव उधर रस" होता है।

आचार्य पार्श्वदेव ने **ताल अध्याय** में गीत, वाद्य और नृत्य के साथ ताल का समन्वय बताते हुए उसकी निष्पत्ति 'तल्' धातु से बताई है। उन्होंने ताल के बारे में एक सबसे बड़ी बात यह बताई है कि 100 कमल पत्रों में एक बार सुई छेदने का काल प्रत्येक दल में एक 'क्षण', 8 क्षणों का 'लव' 8 लवों की एक 'काष्ठा', 8 काष्ठाओं का एक 'निमेष', 8 निमेषों का एक 'काल', 4 कालों से एक 'त्रुटि', दो त्रुटियों से एक 'अर्धद्रुत्त', दो अर्धद्रुतों से एक 'बिंदु', दो बिंदुओं से एक 'लघु' दो लघुओं से एक 'गुरु' और तीन लघुओं से एक 'प्लुत' होता है। विभिन्न तालों के नाम तथा उनकी जाति, खंड, उनके भेद तथा उपभेद, लय विधि, मात्राएं, उपमात्राएं, 101 अन्य ताल तथा उनके नाम इत्यादि के बारे में विस्तार पूर्वक बताया है।

इनके द्वारा लिखा हुआ **नवम् 'वाद निर्णय' नामक अध्याय** इस युग के लिए अमूल्य निधि है। इसमें संगीत संबंधी प्रतियोगिता के नियमों, निर्णायकों की योग्यताओं, वादी एवं प्रतिवादी के गुण दोषों के तारतम्य का जैसा वैज्ञानिक विवेचन है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। आचार्य पार्श्वदेव के अनुसार मतंग जैसे मनीषियों ने यद्यपि 'वाद' के 4 अंगों, सभापति, सभ्य, वादी एवं प्रतिवादी का वर्णन किया है, परंतु मतंग का ग्रंथ खंडित रूप में ही उपलब्ध है। अतः संगीत समयसार का नवम अध्याय (वाद निर्णय) संगीत शास्त्रों में एक अमूल्य योगदान है।

1.5 संगीत के संदर्भ में संगीत समयसार का विश्लेषण

1.5.1 राग जननी जातियां

आचार्य पार्श्वदेव ने रागों की जननी 'जातियों' को ब्रह्मा के मुख से निर्गत एवं सामवेद से समुत्पन्न बताया है। 'जाति' शब्द का प्रयोग करते समय पार्श्वदेव ने मतंग मुनि के शब्द ज्यों के त्यों दोहरा दिए है। उन्होंने कहा है कि लोक संगीत के बीज लोगों की उस इच्छा में होता है जो मनोरंजन चाहती है। लोक प्रचलित धुने किसी व्यक्ति विशेष की नहीं होती है। जिन धुनों में कोई समानता पाया जाता है उन्हें एक 'जाति' के अंतर्गत रख दिया जाता है। धुनों या विशिष्ट स्वर समुदायों का ऐसा वर्गीकरण करने वाले विचारक महामनीषी थे। पार्श्वदेव के मत से यदि स्वरों को 'ग्रामीण' कहा जाए और उनकी बस्ती को 'ग्राम' कहा जाए तो एक स्वर उस बस्ती का 'राजा' होता है।

1.5.2 स्वर ग्राम

पार्श्वदेव के अनुसार स्वरों के ग्राम दो पाए थे, जिन्हें 'षड़जग्राम' और 'मध्यमग्राम' कहा गया। षड़ज ग्राम में जिस स्वर को 'पंचम' कहा गया उसका क्षेत्र 'चतुश्रुतिक' था और मध्यमग्राम में जिस स्वर को पंचम कहा गया उसका अंतराल 'त्रिश्रुतिक' था। जिन श्रुतियों में इन चतुश्रुतिक षड़ज के साथ चतुश्रुतिक पंचम का स्वाभाविक संबंध था, वह 'षड़ज ग्रामीय' कहलाई। जिन धुनों या जातियों में त्रिश्रुतिक ऋषभ और त्रिश्रुतिक पंचम की संगति होती थी और उनका संबंध भी अत्यंत सहज और स्वाभाविक था वह मध्यमग्रामीय कहलाई।

1.5.3 स्वरों की निष्पत्ति

षड़ज ग्राम के आदिम स्वर का नाम 'षड़ज' (छह अन्य स्वरों को जन्म देने वाला) रखा गया तथा अंतिम स्वर का नाम 'निषाद' (जिस पर स्वरों की समाप्ति हो) रखा गया। सप्तक के मंझले स्वर को 'मध्यम' कहा गया। तंत्री पर स्थापित मध्यम की मुख्य ध्वनि से स्वतः उत्थित होने वाली एक विशेष ध्वनि को 'धैवत' कहा गया। षड़जग्रामीय (षड़ज-पंचम, ऋषभ-धैवत तथा गंधार-निषाद) में प्राप्त अंतराल को ठीक-ठीक नापने वाली ध्वनि 'पंचम' कहलाई। षड़ज ग्राम के मूल सप्तक की द्वितीय ध्वनि को 'ऋषभ' कहा गया तथा सप्तक की तृतीय ध्वनि को 'गांधार' कहा गया।

1.5.4 संवाद

संवाद का अर्थ पारस्परिक प्रश्नोत्तर, एक दूसरे का प्रतिनिधित्व करने की क्षमता तथा एक स्थान पर देखी हुई विशेषता का अन्यत्र दर्शन है। षड़ज, ऋषभ, गांधार और मध्यम में क्रमशः चतुश्रुतिक, द्विश्रुतिक तथा चतुश्रुतिक संवाद है एवं पंचम, धैवत, निषाद और षड़ज की भी स्थिति यही है। अतएव इस स्थिति को संवाद कहा जाता है। षड़ज-पंचम, ऋषभ-धैवत और गंधार-निषाद परस्पर संवादी हैं और इस संवाद को हम परम अनुकूलता कह सकते है। षड़ज-मध्यम और पंचम-षड़ज में भी नवश्रुति अंतराल है तथा यह अंतराल भी ध्वनि संबंधी परम इष्टता का बोधक है। यह संवाद ही स्वर सप्तक की स्थापना का आधार है।

1.5.5 ग्रामीय स्वर का लक्षण

पार्श्व देव ने बताया है जिन दो स्वरों में 9 या 13 श्रुतियों का अंतर हो और जिनकी संख्या समान हो, उनमें 'राग संवाद' भी होता है और 'स्वर संवाद' भी होता है। लेकिन जिन दो स्वरों में 9 या 13 श्रुतियों का अंतर तो हो परंतु उन दोनों की श्रुति संख्या समान ना हो तो उनमें 'स्वर अथवा ध्वनि संवाद' तो होता है परंतु 'राग संवाद' नही होता है।

1.5.6 स्थान और मूर्च्छना

स्वर केवल सात हैं तथा मन्द्र, मध्य और तार स्थानों में ही उनकी पुनरावृत्ति होती रहती है। मन्द्र स्थानीय स्वरों की ध्वनि गंभीर, मध्य स्थानीय स्वरों की सामान्य तथा तार स्थानीय स्वरों की ध्वनि उच्चतम होती है। मन्द्र, मध्य तथा तार स्थानीय स्वरों की ध्वनियां क्रमशः हृदय, कंठ और मुर्धा से उत्पन्न होती है। किसी भी स्थान के आरंभ की ध्वनि को षड़ज, निषाद, धैवत, पंचम, मध्यम, गंधार या ऋषभ मान कर श्रुति संख्या के अनुसार अग्रिम स्वरों की स्थापना उस स्थान में की जा सकती है। अतः इस अवस्था में स्थान का आरंभिक स्वर 'अंश' कहलाता है। अंश स्वर से आरंभ होने वाले स्वर सप्तक का आरोह-अवरोह 'मूर्च्छना' कहलाता है। स्वरमंडल जैसे वाद्यों में किसी भी स्वर को अंश मानकर उसकी मूर्च्छना तीनों स्थानों में की जा सकती है। प्रत्येक मूर्च्छना में प्राप्त स्वर सप्तक उसी ग्राम की अन्य मूर्च्छना के द्वारा प्राप्त स्वर सप्तक से भिन्न होगा। मूर्च्छना शब्द का अर्थ 'एक स्थान के अंतर्गत सात सुरों का आरोह अवरोह' होता है।

1.5.7 मेल पद्धति बनाम प्राचीन ग्राम पद्धति

आचार्य पार्श्वदेव को संस्थान या मेल पद्धति मान्य नहीं था । उनके अनुसार संस्थान या मेल पद्धति का प्रचलन पारसिक संगीत के प्रभाव से हुआ है जो प्राचीन भारतीय संगीत पद्धति से भिन्न है । मेल पद्धति को मानने वाले प्राचीन अंश, वादी, ग्राम, मूर्छना की पद्धति को सहजता समझ नहीं पाते ।

1.6 अंश स्वर और रस

पार्श्वदेव के अनुसार स्वरों का सीधा संबंध विभिन्न रसों से है । मध्यम और पंचम का संबंध 'शृंगार और हास्य' से, षड़ज और ऋषभ का संबंध 'उत्साह, क्रोध और विस्मय' से, गंधार और निषाद का संबंध 'करुणा' से तथा धैवत का संबंध 'जुगुप्सा और भय' से है। अतः कहा गया है कि 'श्रंगार और हास्य' के लिए मध्यम या पंचम को, 'वीर, रौद्र एवं अद्भुत' रस के लिए षड़ज और ऋषभ को, 'करूण' के लिए गंधार एवं निषाद को तथा 'विभत्स और भयानक' के लिए धैवत को अंशत्व देना चाहिए।

1.7 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों, दिगंबर जैन आचार्य पार्श्वदेव के द्वारा लिखित यह ग्रंथ 'संगीत समयसार' अपने समय की अमूल्य निधि है। इस ग्रंथ में तत्कालीन संगीत, नृत्य, वाद्य तथा गीत के सभी प्रकारों का विस्तार पूर्वक उल्लेख हुआ है। यह ग्रंथ संगीत तथा संगीत साधकों के लिए तथा शिक्षाविदों के लिए एक अमूल्य ग्रंथ है जो भारतीय साहित्य, संगीत और संस्कृति के बारे में

प्राचीन तथ्यों को प्रमाणित करता है। आचार्य पार्श्वदेव ने अन्य विभिन्न ग्रंथकारों का उल्लेख एवं उनके वैज्ञानिक दृष्टिकोण को भी इस ग्रंथ में जगह देकर उनके तथा अपने वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रतिपादित किया है। भावना अनुकूल होने के साथ-साथ संगीत में जो वैज्ञानिकता का परिदृश्य इस ग्रंथ में मिलता है, अन्यत्र कहीं मिलना मुश्किल है। अतएव उस समय के अनेक शिक्षाविदों ने इस ग्रंथ को महत्वपूर्ण माना है।

1.8 स्व मूल्यांकन प्रश्न

प्रश्न 1 - दिगंबर जैन आचार्य पार्श्वदेव के बारे में संक्षिप्त वर्णन करें?

प्रश्न 2 - पार्श्वदेव रचित संगीत समयसार ग्रन्थ की संगीत के सन्दर्भ में चर्चा कीजिये?

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 2 पं शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर

सूचीपत्र

2.0 भूमिका

2.1 अधिगम से संप्राप्ति

2.2 पंडित शार्ङ्गदेव का परिचय

2.3 ग्रंथ परिचय

2.4 स्वरगताध्याय

- 2.4.1 पदार्थ संग्रह प्रकरण
- 2.4.2 पिण्डोत्पत्ति प्रकरण
- 2.4.3 नाद, स्थान, श्रुति, स्वर, जाति आदि प्रकरण
- 2.4.4 सारणा चतुष्टयी
- 2.4.5 स्वर
- 2.4.6 ग्राम,मूर्च्छना-क्रम,तान प्रकरण
- 2.4.7 वर्णालंकार प्रकरण
- 2.4.8 जाति प्रकरण
- 2.4.9 गीति प्रकरण

2.5 राग विवेकाध्याय

2.6 प्रकीर्णकाध्याय

2.7 प्रबंधाध्याय

2.8 तालाध्याय

2.9 वाद्याध्याय

2.10 नर्तनाध्याय

2.11 संगीत रत्नाकर का महत्व

2.12 सारांश

2.13 अभ्यास प्रश्नावली

2.0 भूमिका

तेरहवीं शताब्दी में पंडित शार्ङ्गदेव कृत संगीत रत्नाकर भारतीय संगीत का आधार ग्रंथ है। जैसे की आपने पहले के अध्यायों में पढ़ा कि भारत में मध्य एशियाई जातियों के आधिपत्य होने के कारण ग्यारहवीं शताब्दी से ही विशेष कर उत्तर भारतीय कला और संस्कृति पर विदेशी संस्कृति का प्रभाव पड़ने लगा था। मतंग के बाद के संगीत शास्त्रियों के ग्रंथों में तत्कालीन संगीत का समावेश न हो करप्राचीन संगीत ग्रंथों का ही अनुसरण किया जा रहा था। तेरहवीं शताब्दी के आते आते उत्तर भारत का संगीत भी प्राचीन पंथा को काफी हद तक पीछे छोड़ चुका था।इसी शताब्दी में संगीत के क्षेत्र में अमीर खुसरो ने कई नवीन प्रयोग किए जिसके सुदूर

प्रसारी परिणाम थे। ऐसे में पंडित शार्ङ्गदेव कृत संगीत रत्नाकर उस समय के संगीतके संबंध में बहुत महत्वपूर्ण जानकारी देता है । लेखक ने प्राचीन सभी मतों का मन्थन कर प्राचीन तथा समकालीन संगीत का विस्तृत विवरण संगीत रत्नाकर जैसे अमर कृति में प्रस्तुत किया है। संगीत के क्षेत्र में शोध परक जानकारी के लिए इस पुस्तक का ज्ञान होना बहुत ही आवश्यक है।

2.1 अधिगम से संप्राप्ति

इस अध्याय के पठन के बाद विद्यार्थी

- संगीत रत्नाकर ग्रंथ का संक्षिप्त विवरण दे पाएंगे।
- संगीत विषय में शोध के लिए इस ग्रंथ के महत्व को समझेंगे तथा लघु शोध के लिए इस ग्रंथ का इस्तेमाल कर पाएंगे।
- प्राचीन संगीत के साथ वर्तमान संगीत का सामंजस्य बिठा पाएंगे।

2.2 पंडित शार्ङ्गदेव का परिचय

संगीत रत्नाकर के प्रथम चौदह श्लोकों में पंडित शार्ङ्गदेव ने स्वयं अपना एवं अपने आश्रयदाताओं का वर्णन किया है जिस से पता चलता है कि लेखक संगीत में प्रवीण होने साथ-साथ आयुर्वेद के भी प्रकाण्ड विद्वान थे। उन्होंने संगीत रत्नाकर के प्रथम अध्याय के पिण्डोत्पत्ति प्रकरण (श्लोक स० ११९) में स्वरचित आयुर्वेद शास्त्र पर आधारित 'आध्यात्मविवेक' नामक ग्रंथ का उल्लेख किया है।

पंडित शार्ङ्गदेव पेशे से महालेखाकार थे। उनका उपनाम निःशंक था। उन्होंने अपने उपनाम से तालाध्याय में निःशंक ताल तथा वाद्याध्याय में निःशंक वीणा का वर्णन किया है। लेखक काश्मीर के वृषगण गोत्रवाले वंश के थे। उनके पिता का नाम सोढल और दादा का नाम भास्कर था। सम्भवतः विदेशीयों के आक्रमण के कारण उनके पिता सोढल ने दक्षिण के यादवों के राजधानी देवगिरि (अधुना महाराष्ट्र के दौलताबाद नगर) में महाराज भिल्लम के पुत्र राजा सिंहन के संरक्षण में आ गए। बाद में महाराज भिल्लम के संरक्षण में शार्ङ्गदेव को सम्मान एवं धन-संपत्ति के साथ-साथ संगीत विद्या को ग्रहण करने का अनुकूल वातावरण मिला।

2.3 ग्रंथ परिचय

जब भारतीय संस्कृति एवं संगीत में विदेशीयों का प्रभाव पड़ रहा था, उसी समय भारतीय संगीत को संरक्षित करने के लिए पंडित शार्ङ्गदेव ने संगीत रत्नाकर की रचना की। इसलिए इसे भारतीय संगीत के सभी ग्रंथों का आधार ग्रंथ माना जाता है। बाद में संगीत रत्नाकर के मुख्य दो टीकाकार हुए कल्लिनाथ और सिंहभूपाल जिनके टीकाग्रन्थों से संगीत रत्नाकर को और आसानी से समझा जा सकता है। इस ग्रंथ की सात अध्याय है जिस कारण से इसे सप्ताध्यायी के नाम से भी जाना जाता है ; ये सात अध्याय इस प्रकार हैं –

१) स्वरगत अध्याय

२) राग विवेकाध्याय

३) प्रकीर्णकाध्याय

४) प्रबंधाध्याय

५) तालाध्याय

६) वाद्याध्याय तथा

७) नर्तनाध्याय

2.4 स्वरगताध्याय

स्वरगताध्याय आठ प्रकरणों में विभक्त है, जो इस प्रकार है –

१) पदार्थ संग्रह प्रकरण

२) पिण्डोत्पत्ति प्रकरण

३) नाद, स्थान, श्रुति, स्वर, जाति आदि प्रकरण

४) ग्राम, मूर्च्छना-क्रम, तान प्रकरण

५) साधारण लक्षण

६) वर्णालंकार प्रकरण

७) जाति प्रकरण तथा

८) गीति प्रकरण

2.4.1 पदार्थ संग्रह प्रकरण

पदार्थ संग्रह के प्रथम श्लोक में मंगलाचरण, चौदह श्लोकों में वंश परिचय तथा पंडित शार्ङ्गदेव के आचार्यों के ग्रंथ परिचय दिया। इसके पश्चात उन्होंने संगीत की परिभाषा बताई है 'गीतम् वाद्यम् तथा नृत्यम् त्रयं संगीतमुच्यते' गीत, वाद्य तथा नृत्य को संगीत कहा है और देशी और मार्गी- दोनों प्रकार के संगीत को अच्छे से पारिभाषित किया है। उनके अनुसार ब्रह्मा द्वारा निर्मित तथा भरत मुनि के द्वारा प्रतिपादित जो संगीत था वह **मार्गी संगीत**, और विभिन्न प्रदेशों के लोगों के द्वारा मनोरंजन हेतु गाये जाने वाला संगीत **देशी संगीत** था। इसके पश्चात उक्त प्रकरण के शेष भाग में ग्रंथ के अध्यायों का विस्तार पूर्वक परिचय दिया है।

2.4.2 पिण्डोत्पत्ति प्रकरण

इस प्रकरण में नाद, नाद के दो प्रकार – आहत और अनाहत, नाद का ब्रह्मस्वरूप, जीवस्वरूप, सृष्टिक्रम आदि के बारे में समझाया है। क्योंकि गायन की क्रिया शरीर रुपी यंत्र से ही की जाति है इस लिए इस यंत्र को समझना बहुत जरूरी है। शार्ङ्गदेव ने इस लिए मनुष्य के शरीर के भीतरी अंगों का बहुत अच्छे से वर्णन किया है। नाद की उत्पत्ति के लिए जरूरी सभी अंग प्रत्यंग का व उनके कार्य को विस्तार पूर्वकसमझाया है। आयुर्वेद के अनुसार सभी शरीर के चक्रों के कार्यों को समझाया है तथा स्वर के सही प्रकार से निकासी के लिए गायक का आसन,उसका आचरण, उसके खान पान का

अभ्यास आदि सभी का विस्तारपूर्वक विवरण दिया है । पंडित शार्ङ्गदेव स्वयं एक आयुर्वेद के विद्वान होने के कारण इन सब के बारे में विस्तारपूर्वक विवरण देना संभव हो पाया है ।

2.4.3 नाद, स्थान, श्रुति, स्वर, जाति आदि प्रकरण

नाद

इस तृतीय प्रकरण में सर्वप्रथम लेखक ने नाद के पाँच प्रकार - अतिसूक्ष्म ,सूक्ष्म, पुष्ट, अपुष्ट तथा कृत्रिम बताया है तथा ये पाँच प्रकार के नाद नाभि, हृदय, कण्ठ, मूर्द्धा तथा मुख से उत्पन्न होते हैं । इसके पश्चात नाद को परिभाषित करते हुए शार्ङ्गदेवबताते हैं कि –

नकारं प्राणनामानं दकारमनलं विदुः ।
जातः प्राणाग्निसंयोगात्तेन नादोऽभिधीयते ।।

नकार यानी प्राण एवं दकार यानी अग्नि के संयोग से उत्पन्न ध्वनि 'नाद' कहलाता है । इस प्रकार नाद के तीन स्थान– मन्द्र, मध्य तथा तारहै,जिनकी निष्पत्ति हृदय, कण्ठ तथा मूर्धा से होती है।

श्रुति

तस्य द्वाविंशतिर्भेदाः श्रवणाच्छ्रुतयो मताः ।

नाद के बाईस भेद है, जिन्हें 'श्रुति' कहते है ।

2.4.4 सारणा चतुष्टयी

सारणा चतुष्टयी के सबंध में भरत के मत का समर्थन करने में पंडित शार्ङ्गदेव का नाम अन्यतम है । लेखक ने दोनों वीणा- ध्रुव या अचल वीणा एवं चल वीणा के बाईस तंत्रीयोंमें समानता रखते हुए वीणा के तारों पर सारणा पद्धति द्वारा स्वरों की स्थापना की ।

श्रुति-जातियाँ

दीप्ता, आयता, करुणा, मृदु और मध्या ये श्रुतियों की पाँच जातियाँ होती है ।

श्रुतियाँ	**जातियाँ**
तीव्रा, रौद्री, वज्रिका, उग्रा	दीप्ता
कुमुद्वती, क्रोधा, प्रसारिणी, संदीपनी, रोहिणी	आयता
दयावती, आलापिनी, मदंती	करुणा
मंदा, रक्ता, प्रीति, क्षिति	मृदु
छंदोवती, रंजनी, मार्जनी, रक्तिका, रम्या, क्षोभिणी	मध्या

2.4.5 स्वर

पं शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर

पंडित शार्ङ्गदेव के अनुसार श्रुति के पश्चात उत्पन्न होने वाले नाद जो स्निग्ध और अनुरणणात्मक हो तथा जिसमें रंजकता के गुण समाविष्ट हो यानी जो स्वतः ही श्रोता के चित्त को रंजन कर सके, वह'स्वर' कहलाता है। स्वर सात है – षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत तथा निषाद तथा इनके अन्य नाम है – सा, रे, ग, म, प, ध, नि। लेखक ने सात स्वरों को ४,३,२,४,४,३,२ श्रुतियों के अंतराल में स्वरों की स्थापना की। इसके अतिरिक्त बारह विकृत स्वर माना है।

क्रं० सं०	श्रुतियाँ	शुद्ध स्वर	विकृत स्वर
१	तीव्रा		कैशिक निषाद
२	कुमुद्वती		काकली निषाद
३	मंदा		च्युत षड्ज
४	छंदोवती	षड्ज	अच्युत षड्ज
५	दयावती		
६	रंजनी		
७	रक्तिका	ऋषभ	विकृत ऋषभ
८	रौद्री		
९	क्रोधी	गांधार	
१०	वज्रिका		साधारण गांधार
११	प्रसारिणी		अंतर गांधार
१२	प्रीति		च्युत मध्यम
१३	मार्जनी	मध्यम	अच्युत मध्यम
१४	क्षिति		
१५	रक्ता		
१६	संदीपिनी		मध्यमग्रामिक पंचम, कैशिक पंचम
१७	आलापिनी	पंचम	
१८	मदंती		
१९	रोहिणी		
२०	रम्या	धैवत	विकृत धैवत
२१	उग्रा		
२२	क्षोभिणी	निषाद	

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

स्वर पर जातियों की स्थिति इस प्रकार है –

जाति	स्वर
दीप्ता, आयता, मृदु, मध्या	षड्ज
करुणा, मध्या, मृदु	ऋषभ
दीप्ता, आयता	गांधार
दीप्ता, आयता, मृदु, मध्या	मध्यम
मृदु, मध्या, आयता, करुणा	पंचम
करुणा, आयता, मध्या	धैवत
दीप्ता, मध्या	निषाद

शार्ङ्गदेव के अनुसार स्वरों की उत्पत्ति विभिन्न प्राणियों के कंठसवारों से हुआ है ।उन्होंने मोर, चातक, बकरा, क्रौच, कोकिल आदि प्राणियों से स्वरों की उत्पत्ति बताई है । इस के बाद उन्होंने चार प्रकार के स्वर बताया है – वादी, संवादी, विवादी तथा अनुवादी । जिस स्वर का प्रयोग अधिक होता है,वादी कहलाता है । स्वरों के राज्य में वादी स्वर राजा है । जब दो स्वरों के बीच में आधार स्वर के अतिरिक्त १२ अथवा ८ श्रुतियों का अंतर हो, वे परस्पर संवादी होते हैं । वादी को अनुसरण करने वाला संवादी अमात्य यानी मंत्री के समान है । विवादी विपरीत होने के कारण शत्रु के समान है । शेष सभी स्वर अनुवादी है तथा ये वादी तथा संवादी को अनुसरण करने के कारण स्वर-राज्य के सेवक के समान है । इस प्रकरण के अंत में लेखक ने स्वर के वर्ण, कुल, रंग, द्वीप आदि को वर्णन किया है ।

स्वर के वर्ण, कुल, रंग, द्वीप आदि

स्वर	कुल	वर्ण	रंग	द्वीप	ऋषि	देवता	छंद	रस
षड्ज	देव	ब्राह्मण	रक्त	जम्बू	अग्नि	अग्नि	अनुष्टुप	वीर, अद्भुत तथा रौद्र
ऋषभ	ऋषि	क्षत्रिय	पिंजर	शाक	ब्रह्मा	ब्रह्मा	गायत्री	वीर, अद्भुत तथा रौद्र
गांधार	देव	वैश्य	स्वर्ण	कुश	चंद्रमा	सरस्वती	त्रिष्टुप	करुण
मध्यम	देव	ब्राह्मण	कुंद	क्रौच	विष्णु	महादेव	बृहती	हास्य तथा शृंगार
पंचम	पितृ	ब्राह्मण	कृष्ण	शाल्मली	नारद	विष्णु	पंक्ति	हास्य तथा शृंगार
धैवत	ऋषि	क्षत्रिय	पीत	श्वेत	तुम्बुरु	गणेश	उष्णिक	वीभत्स या भयानक
निषाद	असुर	वैश्य	मिश्रित	पुष्कर	तुम्बुरु	सूर्य	जगती	करुण

2.4.6 ग्राम,मूर्च्छना-क्रम,तान प्रकरण

इस प्रकरण में ग्राम को मूर्च्छना आदि का आश्रय स्वर समूह कहा गया है तथा दो ग्राम के भेद है – षड्ज ग्राम एवं मध्यम ग्राम। पंचम जब चौथी श्रुति पर स्थित होती है, उसे षड्ज ग्राम तथा जब पंचम तीसरी श्रुति परस्थित होता है, उसे मध्यम ग्राम कहते है। सात स्वरों के आरोहण और अवरोहण को मूर्च्छना की संज्ञा दी है तथा दोनों ग्रामों के सात-सात मूर्च्छनाएँ है।

षड्ज ग्राम की मूर्च्छनाएँ	मध्यम ग्राम की मूर्च्छनाएँ
उत्तरमन्द्रा	सौवारी
रजनी	हारिणाश्वा
उत्तरायता	कलोपनता
शुद्धषड्जी	शुद्धमध्यमा
मत्सरीकृता	मार्गी
अश्वक्रान्ता	पौरवी
अभिरुद्गता	हृष्यका

इसके पश्चात लेखक ने तान, प्रस्तार, प्रस्तार-सिद्धांत, खण्डमेरु, खण्डमेरु के प्रयोग द्वारा तान-ज्ञान तथा तान प्रकार का वर्णन किया है।

साधारण लक्षण

'साधारण' का अर्थ है सामान्य। साधारण दो प्रकार के होते है – 'स्वर साधारण तथा जाति साधारण'। स्वर साधारण के चार प्रकार है – काकली साधारण, अंतर साधारण,षड्ज साधारण तथा मध्यम साधारण। एक ग्राम में उत्पन्न समान स्वर वाली जातियों में समान गान को जाति साधारण की संज्ञा दी है।

2.4.7 वर्णालंकार प्रकरण

इस प्रकरण में वर्ण को अच्छी प्रकार से समझाया गया है। गान क्रिया को वर्ण कहा जाता है तथा इसके चार भेद होते हैं -स्थायी, आरोही, अवरोही तथा संचारी। एक स्वर का रुक-रुककर उच्चारण करने से स्थायी वर्ण कहलाता है। इसी प्रकार जिस स्वर से आरोहण किया जाता है, उसे आरोही वर्ण, जिस स्वर से अवरोहण किया जाता है, उसे अवरोही वर्ण तथा जहाँ इन तीनों का संमिश्रण होता है, उसे संचारी वर्ण के नाम से संबोधित किया है।

इस शृंखला को आगे बढ़ाते हुए लेखक ने विशिष्ट वर्ण संदर्भ को अलंकार कहा है। पंडित शार्ङ्गदेव ने स्थायी वर्ण के सात अलंकार, आरोही के बारह, अवरोही के बारह, संचारी के पच्चीस तथा अन्य सात अलंकार कुल मिलाकर छत्तीस अलंकार बताए हैं।

2.4.8 जाति प्रकरण

इस प्रकरण में सर्वप्रथम लेखक ने शुद्ध जातियों में षड्ज से षाड्जी, ऋषभ से आर्षभी आदि सात स्वरों के नाम वाली जातियों का नामोल्लेख किया है। इसके पश्चात ग्यारह संसर्ग यानी दो या दो से अधिक जातियों से निर्मित जातियों का वर्णन किया है। ग्यारह संसर्ग जातियाँ इस

प्रकार है –षड्जकैशिकी, षड्जोदीच्यवा, षड्जमध्यमा,गांधारोदीच्यवा, रक्तगांधारी, कैशिकी, मध्यमादीच्यवा, कार्मारवी, गांधारपंचमी, आंध्री तथा नंदयन्ती। इन अठारह जातियों में से सात षड्ज ग्राम की और ग्यारह मध्यम ग्राम की जातियाँ थी। सात षड्ज ग्राम की जातियाँ इस प्रकार है – १) षाड्जी, २) आर्षभी, ३) धैवती, ४) नैषादी, ५) षड्जकैशिकी, ६) षड्जोदीच्यवा तथा ७) षड्जमध्यमा तथा ग्यारह मध्यम ग्राम की जातियाँ इस प्रकार है – १) गांधारी, २) मध्यमा, ३) गांधारोदीच्यवा, ४)रक्तगांधारी, ५)कैशिकी, ६)मध्यमादीच्यवा, ७)कार्मारवी, ८)गांधारपंचमी, ९)आंध्री तथा १०)नंदयन्ती। इसके अतिरिक्त उन्होंने भरत आदि विद्वानों के मत को पुष्ट करते हुए षड्ज, मध्यम तथा पंचम के अंश होने पर उन जातियों कोस्वर साधारण की संज्ञा दी है। इस के बाद उन्होंनेजातियों के १३ लक्षण – ग्रह, अंश, तार, मन्द्र, न्यास, अपन्यास, सन्यास, विन्यास, बहुत्व, अल्पत्व, लंघन, अंतरमार्ग, षाडव तथा औडुव आदि कीव्याख्या की है।

2.4.9 गीति प्रकरण

लेखक ने पद तथा लय से युक्त और वर्ण आदि से विभूषित गानक्रिया को गीति की संज्ञा दी है। विद्वानों ने चार गीतियों की व्याख्या की है -मागधी, अर्धमागधी, संभाविता और पृथुला। मागधी गीति के अंतर्गत गीत शैली को गान करते समय गीत के प्रथम खण्ड का गान विलम्बित लय में, द्वितीय खण्ड का गान मध्य लय में तथा अन्तिम खण्ड का गान द्रुत लय में होता था। मागधी की अपेक्षा अर्धकाल में गाई जाने वाली गीति 'अर्धमागधी' कहलाती थी। अधिक दीर्घ अक्षरवाली सम्भाविता और अधिक लघु अक्षर वाली पृथुला गीति कहलाती थी।

2.5 राग विवेकाध्याय

इस अध्याय के अंतर्गत दस वर्गों में २५६ राग बताए गए है, जिन्हें मार्ग और देशी रागों में विभक्त किया गया है। मार्ग रागों के अंतर्गत ग्राम राग, उपराग, राग, भाषा, विभाषा और अन्तरभाषा - ये छः वर्ग होता है एवं देशी रागों के अंतर्गत रागांग, भाषांग, क्रियांग और उपांग - ये चार वर्ग है।

पाँच प्रकार की गीतियों का आश्रय लेने से ग्रामराग पाँच प्रकार के है - शुद्धा, भिन्ना, गौडी, वेसरा और साधारणी। सीधा या सरल और मनोहर स्वरों से युक्त गीति 'शुद्धा' गीति थी। विषम तथा सूक्ष्म स्वरों और मधुर गमकों से युक्त गीति 'भिन्ना' गीति थी, जिस में तीनों स्थानों में भारी गमकों के साथ विस्तार किया जाता था। चार वर्णों – स्थायी, आरोही, अवरोही तथा संचारी में द्रुत उच्चारित स्वरों से युक्त गीति 'वेसरा गीति' को विद्वानों ने "राग-गीति" भी कहा है तथा इन चारों गीतियों के लक्षणों से युक्त गीति को 'साधारणी गीति' कहा जाता था। ग्राम राग गीतियों पर आधारित थे, जिनमें से तीन षड्ज ग्राम से तथा चार मध्यम ग्राम से उत्पन्न थे। भिन्न गीति में पाँच ग्रामराग, गौड गीति में तीन, वेसरा गीति में आठ ग्रामराग और साधारणी गीति पर सात ग्रामराग आधारित थे। इस प्रकार तीस ग्राम राग, आठ उपराग, बीस राग, भाषा राग 96, विभाषा राग बीस तथा अन्तरभाषा राग चार थे।

संगीत रत्नाकर में पूर्व-प्रसिद्ध रागों के अंतर्गत आठ रागांग, ग्यारह भाषांग, बारह क्रियांग तथा तीन उपांग मिलाकर कुल 34 रागों का उल्लेख किया गया है। अधुना प्रसिद्ध रागों में सोलह

रागांग, नौ भाषांग, तीन क्रियांग तथा 27 उपांग राग मिलकर कुल 52 रागों का उल्लेख किया गया है।

2.6 प्रकीर्णकाध्याय

तृतीय प्रकीर्णकाध्याय में शार्ङ्गदेवने वाग्गेयकार, गांधर्व, स्वर, गायन या गायक के गुण-दोष तथा शब्द-भेद, शब्द के गुण-दोष, शरीर के गुण-दोष, गमक, स्थाय भेद एवं लक्षण, आलप्ति और वृंद लक्षण का वर्णन किया है।

2.7 प्रबंधाध्याय

अब तक आप जान ही चुके हैं कि स्वर तथा तालबद्ध पद को प्रबंध कहा जाता था जिसे आज हम बंदिश या गीत भी कहते हैं। प्रबंधाध्याय में धातु, अंग, जाति, प्रबन्धों के प्रकार, शुद्ध सूड, छायालग, आलिक्रम, सूडस्थ, आलिस्थ, विप्रकीर्ण, सूडसमाश्रित और गीतस्थ आदि प्राचीन प्रबंधों के बारे में विस्तार पूर्वक बताया गया है। प्रबंध केगुण-दोष के विषय में भी विस्तार से वर्णन किया गया है।

संगीत रत्नाकर में गान के दो भेद निबद्ध एवं अनिबद्ध बताया गया है और प्रबन्धों को निबद्ध गान के अंतर्गत रखते हुए कहा गया है – 'संज्ञात्रयं निबद्धस्य प्रबन्धो वस्तु रूपकम्'। प्रबन्ध का अर्थहै 'प्रबध्यो इति प्रबन्ध' अर्थात अनेक अंगों का एक अंग में बद्ध होना प्रबन्ध कहलाता है। प्रबन्ध की चार धातुथे - १)उद्ग्राह,२)मेलापक,३)ध्रुव ४) आभोग तथा छे अंग थे - १)स्वर, २) विरुद, ३)पद, ४)तेनक, ५)पाट तथा ६)ताल है।

इसके अतिरिक्त पंडित शार्ङ्गदेव ने जिस प्रकार धातुओं के आधार पर प्रबंधों को वर्गीकृत किया है उसी प्रकार अंगों के आधार पर भी प्रबन्धों का वर्गीकरण पाँच जातियों के अंतर्गत किया है –

१) मेदिनी – छे अंगों से समन्वित हों।

२) आनन्दिनी – पाँच अंगों से समन्वित हों।

३) दीपनी – चार अंगों से समन्वित हों।

४) भावनी – जो तीन अंगों से समन्वित हों।

५) तारावाली - जो दो अंगों से समन्वित हों।

संगीत के प्राचीन ग्रन्थों में लक्षणों के आधार पर प्रबन्ध के भेद है -१)निर्युक्त, २)अनिर्युक्त तथा ३) उभयात्मक। पंडित शार्ङ्गदेव के अनुसार छन्द व ताल आदि के नियमों से युक्त प्रबन्ध 'निर्युक्त' कहलाता है। जिन प्रबन्धों में छन्द व ताल के निश्चित नहीं होते, वे अनिर्युक्त कहलाते है। जिन प्रबन्धों में कहीं छन्द व कहीं अंगों का प्रयोग किया गया हो अथवा जिन प्रबन्धों में धातुओं में विशेष अंगों की समायोजना तथा पद विशेष में किसी छन्द की समायोजना निहित हों, उन्हे उभयात्मक प्रबन्ध कहा जाता है। इसके अलावा लेखक ने प्रयोग के आधार पर प्रबंध के तीन भेद बताए है -१)सूड, २)आलि अथवा आली संश्रय तथा ३)विप्रकीर्ण।

2.8 तालाध्याय

पंचम तालाध्याय में ताल, मार्ग ताल, कला, पात, चार मार्ग, कलाष्टक, गुरु, लघु, आदि मान, एक कला आदि भेद, पाद भाग, मात्रा, ताल में पट, कला विधि, अंगुलियों का नियम, युग्मादि भेद, परिवर्त, लय, यति, गीत, छन्दक आदि गीत, तालांग समूह, गीत के अंग,१२० देसी तालों में से अंतिम दो तालों की रचना उन्होंने अपने उपनाम 'निःशंक' के नाम से किया है।

संगीत रत्नाकर में वर्णित १२० देशी ताल

आदिताल	त्रिभिन्न	राजविद्याधर	अभिनंदन	प्रतिमण्ठक	सिंह
द्वितीयक	राजचूड़ामणि	जयमंगल	नांदी	पार्वती लोचन	करुण
तृतीय	रंगोद्योत	माल्लिकामोद	मल्ल ताल	रति ताल	सारस
चतुर्थक	रंगप्रदीपक	विजयानन्द	पूर्ण ताल	करणयति ताल	चण्ड
पंचम	राजताल	क्रीड़ा ताल	खण्ड ताल	ललित ताल	चंद्रकला
निःशंकलील	त्र्यस्त्र वर्णताल	जयश्री	कंदुक ताल	गारुगी	लय
दर्पण	मिश्रवर्ण	मकरंद	येकताली	राजनारायण	स्कंद
सिंहविक्रम	सिंहविक्रीडित	कीर्ति ताल	कुमुद ताल	लक्ष्मीश	अड्डताली
रतिलील	जयताल	श्रीकीर्ति	वाकुमुद ताल	ललितप्रिय	घत्ता
सिंहलील	वनमाली	प्रति	चतुस्ताल	श्रीनंदन	द्वंद
कंदर्प	हंसनाद	विजय	डोंबुली	जनक	मुकुंद
वीरविक्रम	सिंहनाद	बिंदुमाली	भंग ताल	वर्धन	कोविन्दक
रंग	कुडुक्क	सम	रायवंकोल	रागवर्धन	कलध्वनि
श्रीरंग	तुरङ्गलील	नंदन	बसंत	षट् ताल	गौरी
चच्चरी	शरभलील	मण्ठिका	लघुशेखर	अन्तर क्रीड़ा	सरस्वतीकण्ठाभरण
प्रत्यंग	सिंहनन्दन	दीपक	प्रतापशेखर	हंस	भग्न ताल
यतिलग्न	त्रिभङ्गी	उदीक्षण	झंपाताल	उत्सव	राजमृगांक
गजलील	रंगाभरण	ढेंकी	गज झंपाताल	विलोकित	राजमार्तण्ड
हंसलील	कोकिलप्रिय	विषम	चतुर्मुख	गज	निःशंक
वर्णभिन्न	निःसारुक	वर्णमण्ठिका	मदन ताल	वर्णयति	शारङ्गदेव

2.9 वाद्याध्याय

शार्ङ्गदेव ने वाद्याध्याय के अंतर्गत परंपरा के अनुसार वाद्यों का चार भेद बताया है -१)तत्, २)सुषिर, ३)आनद्ध और ४)घन वाद्य। उनके द्वारा बताए गए वाद्य इस प्रकार हैं -

तत् वाद्य - किन्नरी, एकतंत्री, महती, त्रितन्त्री, सप्ततन्त्री आदि वीणाओं के प्रकार।

आनद्ध वाद्य - पटह, मर्दल, करटा, घट, घढसा, ढवसा, ढक्का, कुडुक्का, कुडुका, रुंज, डमरू, डक्का, मण्डिक्का, डक्कुली, सेल्लुका, झल्लरी, भाण, त्रिवली, दुंदुभी, भेरी, निसाण तथा तुम्बकी।

सुषिर वाद्य - वंशी, पावा, पाविका, मुरली, काहल, तुण्डकिनी, चुक्का, शृंग और शंख।

घन वाद्य - कम्रा, कांस्यताल, घण्टा, जयघण्टा, ताल, पट्ट वाद्य, मंजीरा, शुक्ति वाद्य तथा क्षुद्र घण्टिका। इन सभी वाद्यों का लेखक ने विस्तार से वर्णन किया है।

2.10 नर्तनाध्याय

इस अध्याय में नृत्य, नाट्य की उत्पत्ति, अभिनय के भेद, नृत्य एवं नृत्त के लक्षण, आंगिक अभिनय के भेद, रस तथा भावों के क्रम का विस्तार से विवरण किया है।

2.11 संगीत रत्नाकर का महत्व

संगीत रत्नाकर परवर्ती ग्रंथकारों (मध्यकालीन एवं वर्तमान) के लिए एक आधार ग्रंथ रहा है।इस ग्रंथ की रचना प्राचीन काल के अन्तिम चरण में पंडित शार्ङ्गदेव ने किया था। यह ग्रंथ प्राचीन तथा पूर्व-मध्यकालीन संगीत का बृहदकोश है। संगीत रत्नाकर में सर्वप्रथम संगीत के तीन अंग – गायन, वादन तथा नृत्य को सात अध्यायों में समाविष्ट किया गया है। लेखक ने ग्रन्थ में भरत के सारणा पद्धति से लेकर तत्कालीन प्रचलित दशबिध राग वर्गीकरण को सम्मिलित किया है। इसी प्रकार प्राचीन मार्ग संगीत के ताल के साथ-साथ तत्कालीन प्रचलित १२० देशी ताल की भी ग्रंथ में चर्चा की। इस ग्रंथ को ही आधार मानकर परवर्ती ग्रंथकार जैसे पंडित सोमनाथ, पंडित रामामात्य, पंडित अहोबल, पंडित व्यंकटमखी आदि मध्यकाल में प्रचलित संगीत की व्याख्या की। यह ग्रन्थ प्राचीन एवं वर्तमान संगीत को जोड़ने का एक सेतु है। आज भी संगीत संबंधी ग्रंथों की रचना संगीत रत्नाकर के सहायता विना असंभव है।

2.12 सारांश

- तेरहवीं शताब्दी में पंडित शार्ङ्गदेव कृत संगीत रत्नाकर भारतीय संगीत का आधार ग्रंथ है।
- जब भारतीय संस्कृति एवं संगीत पर मध्य एशियाई संगीत का प्रभाव पड़ रहा था, उस समय भारतीय संगीत को संरक्षित करने के लिए पंडित शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर की रचना की।

- पंडित शार्ङ्गदेव पेशे से देवगिरि के राजसभा में महालेखाकार थे और स्वयं एक आयुर्वेदाचार्य तथा दार्शनिक भी थे।
- इस ग्रंथ की सात अध्याय है जिस कारण इसे सप्ताध्यायी के नाम से भी जाना जाता है -१) स्वरगत अध्याय,२) राग विवेकाध्याय,३) प्रकीर्णकाध्याय,४) प्रबंधाध्याय,५) तालाध्याय,६) वाद्याध्याय तथा७) नर्तनाध्याय।
- स्वरगताध्याय आठ प्रकरणों में विभक्त है, जो इस प्रकार है –१) पदार्थ संग्रह प्रकरण,२) पिण्डोत्पत्ति प्रकरण,३) नाद, स्थान, श्रुति, स्वर, जाति आदि प्रकरण,४) ग्राम, मूर्च्छना-क्रम, तान प्रकरण,५) साधारण लक्षण,६) वर्णालंकार प्रकरण,७) जाति प्रकरण तथा८) गीति प्रकरण।
- संगीत रत्नाकर के मुख्य टीकाकार कल्लिनाथ और सिंहभूपाल थे।
- पंडित शारंगदेव ने सात शुद्ध तथा बारह विकृत स्वरों को ग्रंथ में स्थान दिया है। ग्राम को मूर्च्छना आदि का आश्रय स्वर समूह कहा गया है तथा ग्राम के दो भेद बताया है – षड्ज ग्राम एवं मध्यम ग्राम।
- सात स्वरों के आरोहण और अवरोहण को मूर्च्छना की संज्ञा दी है तथा दोनों ग्रामों के सात-सात मूर्च्छनाएँ है।
- उन्होनें जाति प्रकरण में अठारह जातियों में से सात षड्ज ग्राम की और ग्यारह मध्यम ग्राम की जातियाँ थी। सात षड्ज ग्राम की जातियाँ इस प्रकार है – १) षाड्जी, २) आर्षभी, ३) धैवती, ४) नैषादी, ५) षड्जकैशिकी, ६) षड्जोदीच्यवा तथा ७) षड्जमध्यमा तथा ग्यारह मध्यम ग्राम की जातियाँ इस प्रकार है – १) गांधारी, २) मध्यमा, ३) गांधारोदीच्यवा, ४) रक्तगांधारी, ५) कैशिकी, ६) मध्यमादीच्यवा, ७) कार्मारवी, ८) गांधारपंचमी, ९) आंध्री तथा १०) नंदयन्ती।
- लेखक ने जातियों के १३ लक्षण – ग्रह, अंश, तार, मन्द्र, न्यास, अपन्यास, सन्यास, विन्यास, बहुत्व, अल्पत्व, लंघन, षाडव तथा औडुव आदि की व्याख्या की है।
- लेखक ने पद तथा लय से युक्त और वर्ण आदि से विभूषित गानक्रिया को गीति की संज्ञा दी है। उन्होंने ने चार गीतियों की व्याख्या की है - मागधी, अर्धमागधी, संभाविता और पृथुला।
- राग विवेकाध्यायमें दस वर्गो में २५६ राग बताए गए है, जिन्हें मार्ग और देशी रागों में विभक्त किया गया है। मार्ग रागों के अंतर्गत ग्राम राग, उपराग, राग, भाषा, विभाषा और अन्तरभाषा - ये छः वर्ग होता है एवं देशी रागों के अंतर्गत रागांग, भाषांग, क्रियांग और उपांग - ये चार वर्ग है।
- शारंगदेव के अनुसार अनेक अंगों का एक अंग में बद्ध होना प्रबन्ध कहलाता है। प्रबन्ध की चार धातु - १) उद्ग्राह,२) मेलापक,३) ध्रुव तथा ४) आभोग तथा छे अंग है- १) स्वर, २) विरुद, ३) पद, ४) तेनक, ५) पाट तथा ६) ताल है।
- अंगों के आधार पर प्रबन्ध का वर्गीकरण पाँच जातियों के अंतर्गत किया गया है –१) मेदिनी (छे अंगों से समन्वित), २) आनन्दिनी (पाँच अंगों से समन्वित), ३) दीपनी (चार अंगों से समन्वित), ४) भावनी (तीन अंगों से समन्वित) तथा ५) तारावाली (दो अंगों से समन्वित)।
- संगीत के प्राचीन ग्रन्थों में लक्षणों के आधार पर प्रबन्ध के भेद है -१) निर्युक्त, २)

अनिर्युक्त तथा ३) उभयात्मक।

❖ लेखक ने प्रयोग के आधार पर प्रबंध के तीन भेद बताए है -१) सूड, २) आलि अथवा आली संश्रय तथा ३) विप्रकीर्ण।

❖ १२० देसी तालों में से अंतिम दो तालों की रचना उन्होंने अपने उपनाम 'निःशंक' के नाम से किया है।

❖ पंडित शार्ङ्गदेव ने वाद्याध्याय के अंतर्गत परंपरा के अनुसार वाद्यों के चार भेद बताया है -१) तत्, २)सुषिर, ३) आनद्ध और ४) घन वाद्य तथा तत वाद्यों के अंतर्गत अन्य वीणाओं के अतिरिक्त एक निःशंक वीणा का भी वर्णन किया है जिसका नामकरण उन्होंने अपने नाम से किया है।

❖ इस ग्रंथ के माध्यम से लेखक ने तत्कालीन संगीत के क्रियात्मक पक्ष को शास्त्र रूप प्रदान किया है।

❖ परवर्ती विद्वानों तथा शोधार्थियों में संगीत रत्नाकर की एक प्रामाणिक और आधार ग्रंथ के रूप में मान्यता है।

2.13 अभ्यास प्रश्नावली

1. भारतीय संगीत में संगीत रत्नाकर के महत्व को प्रकाशित करते हुए ग्रन्थ का विशद विवरण दीजिए ।
2. पंडित शार्ङ्गदेव का परिचय देते हुए भारतीय संगीत में उनके योगदान को विस्तार से विवरण दीजिए।
3. निम्नलिखित वाक्यों के रिक्त स्थानों को भरिए –

क. पंडित शार्ङ्गदेव ने संगीत रत्नाकर की रचना ....में की है।

ख. पंडित शार्ङ्गदेव का उपनाम .... है।

ग. लेखक पेशे से .... थे।

घ. लेखक के पिता का नाम .... तथा पितामह का नाम .... था।

ङ. पंडित शार्ङ्गदेव को .... के संरक्षण में संगीत शिक्षा को ग्रहण करने का मौका मिला।

च. सात अध्यायों से युक्त संगीत रत्नाकर को ....के नाम से भी जाना जाता है।

छ. स्वरगताध्याय .... प्रकरणों में विभक्त है।

ज. श्रुति के पश्चात उत्पन्न होने वाले नाद जो स्निग्ध और अनुरणणात्मक हो तथा जिसमें रंजकता के गुण समाविष्ट हो यानी जो स्वतः ही श्रोता के चित्त को रंजित कर सके, वह .... कहलाता है।

झ. जिस स्वर का प्रयोग राग में अधिक होता है, वह ……….. कहलाता है।

ञ. पंचम जब चौथी श्रुति पर अवस्थित होती है, तब उसे .... ग्राम का तथा जब तीसरी श्रुति पर अवस्थित होता है, उसे ....ग्राम का समझना चाहिए।

ट. गान क्रिया को .... कहते है तथा इसके चार भेद - …………, ………… , ………… तथा .... है।

ठ. विशिष्ट वर्ण संदर्भ को .... कहते है।

ड. पद तथा लय से युक्त और वर्ण आदि से विभूषित गानक्रिया .... कहलाता है।

ढ. अनेक अंगों का एक अंग में बद्ध होना .... कहलाता है।

संगीत रत्नाकर ग्रंथ के उपलब्ध प्रतियाँ और अनुवाद

1. Raja, Dr. C Kunhan, Samgita Ratnakara Of Sarngdeva With The Kaliinatha And The Sudhakara Of Simhabhupala Vol. I – Chapter 1, The Adyar Library And Research Centre, Madras 600020, India, 1945
2. Sastri, Pandit S. Shubhramanya , Samgita Ratnakara Of Sarngdeva With The Kaliinatha And The Sudhakara Of Simhabhupala Vol. II– Adhyaya-s 2 and 4 , The Adyar Library And Research Centre, Madras 600020, India,1959
3. Sastri, Pandit S.Shubhramanya , SamgitaRatnakara Of Sarngdeva With The Kaliinatha And The Sudhakara Of Simhabhupala Vol. III – Adhyaya-s 5 and 6, The Adyar Library And Research Centre, Madras 600020, India, Second Edition 1986
4. मिश्र, श्री राजेश्वर, संगीत-रत्नाकर: एक अध्ययन [संगीत-समीक्षा], निःशंक शार्ङ्गदेव प्रणीत, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2/38, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, पहला संस्करण -1999
5. शारंगदेव, आचार्य, संगीत-रत्नाकर[भाग 1], डॉ० लक्ष्मीनारायण गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस -२०४१०१(उ०प्र०), तीसरा संस्करण, जून, 2002
6. शारंगदेव, आचार्य, संगीत-रत्नाकर[भाग 2], डॉ० लक्ष्मीनारायण गर्ग, संगीत कार्यालय, हाथरस -२०४१०१(उ०प्र०), प्रथम संस्करण, नवम्बर , 2006
7. दासगुप्त, प्रो० लिपिका, भारतीय संगीतशास्त्र ग्रंथ परम्परा : एक अध्ययन, संकलन सम्पादन एवं लेखन – प्रो० लिपिका दासगुप्त, प्रकाशक – प्रेस एण्ड पुब्लिकेशन सेल काशी हिन्दु विश्वविद्यालय, वाराणसी -२२१००५, मुद्रक – महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी, 2009
8. सिंह 'काव्य', डॉ० लावण्य कीर्ति, भारतीय संगीत ग्रन्थ (वर्ण्य-विषय विश्लेषण), कनिष्क पुब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली -११०००२, संस्करण -२०१४

इकाई 3 पंडित अहोबल कृत संगीत पारिजात

सूचीपत्र

3.0 भूमिका

3.1 अधिगम से संप्राप्ति

3.2 पंडित अहोबल का परिचय

3.3 संगीत पारिजात का रचनाकाल

3.4 ग्रंथ परिचय

3.5 राग गीत काण्ड

3.5.1 स्वर प्रकरण

3.6 पंडित अहोबल द्वारा वर्णित शुद्ध तथा विकृत स्वर

(२) ग्राम लक्षण

(३) मूर्च्छना प्रकरण

(५) वर्णलक्षण

(६) अलंकार

(७) जाति निरूपण

(८) गमक

(९) स्वरस्थान लक्षण

(१०) मेल

(११) गीति

(१२) राग प्रकरण

(१३) प्रबंध प्रकरण

(१४) गीत प्रकरण

3.7 वाद्य-ताल काण्ड

(१) वाद्याध्याय

ततवाद्य –

आनद्ध वाद्य–

सुषिरवाद्य–

घनवाद्य–

(२)तालाध्याय

आज के संदर्भ में संगीत पारिजात

3.8 सारांश

3.9 अभ्यास प्रश्नावली

3.0 भूमिका

इस खण्ड के पहले दो अध्यायों में आप ने उन पूर्व मध्यकालीन ग्रंथों के संबंध में जाना जिनका उल्लेख हम बार बार किसी भी संगीत के सैद्धांतिक पक्ष के पुष्टि के लिए करते हैं। इसी कड़ी में "संगीत पारिजात" उत्तर मध्यकाल में लिखी गई ग्रंथों में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है | सत्रहवीं शताब्दी में लिखी गई इस ग्रंथ में पंडित अहोबल ने तत्कालीन प्रचलित उत्तर भारतीय संगीत पद्धति का विस्तार पूर्वक विवेचन किया है।

3.1 अधिगम से संप्राप्ति

- संगीत पारिजात ग्रंथ का संक्षिप्त विवरण दे पाएंगे।
- संगीत विषय में शोध के लिए इस ग्रंथ के महत्व को समझेंगे तथा अपने शोध के लिए इस ग्रंथ का इस्तेमाल कर पाएंगे।
- मध्यकालीन संगीत के साथ वर्तमान संगीत का सामंजस्य बिठा पाएंगे।

3.2 पंडित अहोबल का परिचय

संगीत पारिजात में दिए गए लेखक के अपने शब्दों के अनुसार श्रीकृष्ण पंडित के पुत्र पंडित अहोबल इस ग्रंथ के प्रणेता हैं।परंतु इस के अतिरिक्त उनके निवास स्थान या वंश से संबंधित कोई सूचना उन्होंने नहीं दी। कुछ विद्वानों के अनुसार, पंडित अहोबल दक्षिण भारत के निवासी थे, परंतु बाद में वे उत्तर भारत में चले आए और इस ग्रंथ की रचना की। परंतु इस तथ्य का कोई स्पष्ट विवरण संगीत पारिजात में नहीं मिलता है।

ग्रंथ के उच्चकोटी के साहित्य से यह प्रतीत होता है कि पंडित अहोबल संस्कृत के प्रकांड विद्वान रहे होंगे,साथ ही उच्चकोटी के संगीतज्ञ, गणितज्ञ, तालज्ञ एवं रुद्र वीणा और मृदंग में भी पारंगत रहे होंगे|

संगीत पारिजात का रचनाकाल

संगीत पारिजात के रचनाकाल के विषय में अनेक भ्रांतियाँ हैं क्योंकि इस ग्रंथ में रचनाकाल के विषय में भी कोई उल्लेख नहीं मिलता है। हाल के कुछ शोध के आधार पर इस ग्रंथ का रचनाकाल १६२० से १६५० ई० के बीच के समय को निर्धारित किया गया है।

3.3 ग्रंथ परिचय

प्रोफेसर डॉ० एन रामनाथन जी तथा प्रोफेसर डॉ० नजमा परवीन अहमद जी के अनुसार 'परिजातुक' नामक संगीत पारिजात के फारसी अनुवाद मेंसंगीत के तीनों अंग- गायन, वादन तथा नृत्य के संबंध में तीन काण्डों में चर्चा की गई है; ये हैं – राग गीत काण्ड, वाद्य-ताल काण्ड तथा नृत्य काण्ड | परंतु दुर्भाग्यवश मूल ग्रंथ में इन काण्डों में से नृत्य काण्ड अब लुप्त हो चुका है | वर्तमान में पुणे के श्री गोंधलेकर जी के द्वारा प्रकाशित संस्करण में संगीत पारिजात के केवल दो ही काण्ड प्राप्त होते है – राग गीत काण्ड एवं वाद्य-ताल काण्ड |

संगीत पारिजात का शुभारम्भ पंडित अहोबल ने संगीत में लीन देवताओं पर रचित मंगलाचरण के साथ किया है तथा पूर्व के ग्रंथकारों में मतंग, कश्यप, हनुमान, हाहा, हूहू आदि को धन्यवाद अर्पित करते हुए सांगीतिक विषयों का निरूपण किया है|

3.3.1 राग गीत काण्ड

पंडित अहोबल ने राग-गीत काण्ड को प्रारंभ करने से पूर्व राग गीत काण्ड में वर्णित विषयों की सूची को प्रस्तुत किया है जिस से पता चलता है कि इस ग्रंथ में लेखक ने राग गीत काण्ड के अंतर्गत स्वर प्रकरण, ग्राम लक्षण, मूर्च्छना प्रकरण, मूर्च्छना प्रस्तार प्रकरण, वर्ण लक्षण, अलंकार, जाति निरूपण, गमक, स्वरस्थान लक्षण, मेल, गीति, राग प्रकरण, प्रबंध, प्रबंधों के अंतर्गत कुछ नए प्रबंध जैसे बिन्दु, दरु, अष्टपदी और ध्रुवपद,गीत के गुण-दोष, वाग्गेयकार के लक्षण एवं गायन के गुण-दोष की चर्चा की है|

(१) स्वर प्रकरण

स्वर प्रकरण में पं. अहोबल द्वारा- नाद के दो प्रकार – आहत और अनाहत नाद, वीणा के दो प्रकार– गात्र एवं काष्ठ वीणा, नाद के तीन भेद- मध्य, मन्द्र तथा तार, श्रुति की विवेचना, श्रुतियों के आधार पर स्वरों की स्थापना, श्रुतियों की पाँच जातियाँ - दीप्ता, आयता, करुणा, मृदु तथा मध्या- इन सब तत्वों का प्राचीन ग्रंथों का अनुसरण करते हुए ही वर्णन किया है।

इसके पश्चात उन्होंने स्वर के संबंध मे विस्तृत चर्चा की है। स्वर की परिभाषा बताने के बाद उन्होंनेस्वर के दो प्रकार – शुद्ध तथा विकृत स्वर के बारे में बताया है। उनके अनुसार सात शुद्ध स्वरों के अतिरिक्त बाइस विकृत स्वर थे जिनके संबंध में उन्होंने विस्तार पूर्वक समझाया है। अहोबल के अनुसार वे स्वर जो अपने स्थान से अगले श्रुतियों पर अवस्थित हो जातें है, उन्हें सामूहिक रूप से "तीव्रादि" स्वर कहते हैं। तीव्रादि स्वरों में जो स्वर अपने स्थान से एक श्रुति आगे बढ़ जाता हैउसे "तीव्र",जो स्वर दो श्रुति आगे बढ़ जाता हैउसे "तीव्रतर", जो स्वर तीन श्रुति आगे बढ़ जाता है उसे "तीव्रतम" तथा जो स्वर अपने स्थान से चार श्रुति आगे बढ़ जाता है तो उसे "अतितीव्रतम" की संज्ञा दी जाति है।

इसी प्रकार यदि कोई स्वर अपने से पिछले स्वर की श्रुति को ग्रहण कर लेता है, तब वह स्वर "कोमल" कहलाता है और जब कोई स्वर अपने स्थान से दो श्रुति उतर जाता है, तो वह स्वर "पूर्व" कहलाता है।जब कोई शुद्ध स्वर अपने नियतश्रुति के अतिरिक्त किसी अन्य श्रुति को ग्रहण करता है,तब वही स्वर साधारण कहलाता है। जब 'नि', 'ग' और 'म' क्रमशः 'स','म' और 'प' की तीसरी श्रुतियों पर पहुँच जाते है तो वे क्रमशः मृदु 'स',मृदु 'म' और मृदु 'प' बन जाते हैं।

पंडित अहोबल द्वारा वर्णित शुद्ध तथा विकृत स्वर

क्र सं.	श्रुति के नाम	शुद्ध स्वर	कोमल विकृत स्वर	तीव्र विकृत स्वर
१	तीव्रा			तीव्र निषाद(साधारण)
२	कुमुद्वती			तीव्रतर निषाद
३	मंदा			तीव्रतम निषाद
४	छन्दोवती	षड्ज		

५	दयावती		पूर्व ऋषभ	
६	रंजनी		कोमल ऋषभ	
७	रक्तिका	ऋषभ	पूर्व गान्धार	
८	रौद्री		कोमल गान्धार	तीव्र ऋषभ(साधारण)
९	क्रोधी	गान्धार		तीव्रतर ऋषभ
१०	बज्रिका			तीव्र गान्धार(साधारण)
११	प्रसारिणी			तीव्रतर गान्धार
१२	प्रीति		मृदु मध्यम	तीव्रतम गान्धार
१३	मार्जनी	मध्यम		अति तीव्रतम गान्धार
१४	क्षिति			तीव्र मध्यम(साधारण)
१५	रक्ता			तीव्रतर मध्यम
१६	संदीपनी		मृदु पञ्चम	तीव्रतम मध्यम
१७	आलापिनी	पञ्चम		
१८	मदन्ती		पूर्व धैवत	
१९	रोहिणी		कोमल धैवत	
२०	रम्या	धैवत	पूर्व निषाद	
२१	उग्रा		कोमल निषाद	तीव्र धैवत (साधारण)
२२	क्षोभिणी	निषाद		तीव्रतर धैवत

शुद्ध-विकृत स्वरों के विशद विवरण के पश्चात स्वरों के वादी, संवादी, अनुवादी तथा विवादी स्वरों का वर्णन किया है ।राग में अन्य स्वरों की अपेक्षा जिस स्वर का अधिक प्रयोग किया जाता है, उसे 'वादी' स्वर कहा जाता है ।इसे स्वरों में राजा के समान माना जाता है।वादी स्वर से ८ या १२ श्रुतियों की दूरी पर जो स्वर होता है, उसे 'संवादी' कहते हैं। जो स्वर न वादी, न संवादी और न विवादी स्वर है, उसे अनुवादी स्वर कहा गया है।

जो स्वर राग में रक्ति विच्छेद यानी राग को नष्ट करने का कारण बने, उसे 'विवादी' स्वर कहते हैं। यह अन्य स्वरों में विवाद कराता हैं। जिस प्रकार वादी राग में राजा हैं, उसी प्रकार सम्वादी मंत्री, अनुवादी भृत्य तथा विवादी शत्रु के समान कहलाता है।

स्वर प्रकरण के अंत में स्वरों के असांगीतिक गुण - कुल, वर्ण, देवता, रस आदि की भी चर्चा की गई है। इन सांगीतिक विषयों के संकलन के साथ स्वर प्रकरण का समापन किया गया है।आज के संदर्भ में स्वरों के इन गुणों का महत्व समाप्त हो चुका है इसी लिए इसकी विस्तारित चर्चा का प्रयोजन नहीं है।

(२) ग्राम लक्षण

ग्रंथ में स्वर प्रकरण का विवेचन करने के पश्चात ग्राम लक्षण का वर्णन किया है। स्वरों के एक

समूह को ग्राम कहा गया है तथा ग्राम के तीन प्रकार बताए गए हैं - षड्ज, मध्यम एवं गांधार ग्राम। परंतु संगीत में केवल दो ग्राम -षड्ज तथा मध्यम ग्राम के अस्तित्व को स्वीकार किया है।

(३) मूर्च्छना प्रकरण

पंडित अहोबल ने मूर्च्छना प्रकरण में मूर्च्छना को इस प्रकार से परिभाषित किया है - जब स्वरों का 'आरोहण एवं अवरोहण' होता है तब लोक में पंडित जनों के द्वारा उसे मूर्च्छना कहा गया है। मूर्च्छना की संख्या सात बताया गया है, जो क्रमशः उत्तरमन्द्रा, रजनी, उत्तरायता, शुद्धषड्जा, मत्सरीकृता, अश्वक्रान्ता और अभिरूद्रगता थे। षड्ज एवं मध्यम ग्राम के शुद्ध के साथ-साथ विकृत मूर्च्छनाओं का भी वर्णन किया है।

इस प्रकरण में प्रस्तार को स्पष्ट रूप से परिचित कराया गया। प्रस्तार को जानने के भारतीय छंदशास्त्र में प्रयुक्त नष्ट तथा उदिष्ट विधि को भी समझाया है जो विशेषत: छंद के संदर्भ में प्रयोग किया जाता है, जिसे "खण्डमेरु" भी कहते हैं।

अनुशंसा

भारतीय छंदशास्त्र एक बहुत ही उन्नत अध्ययन शाखा है जिसके साथ गणित का सीधा संबंध है। इसको और अच्छी तरह व्यक्तिगत रूप से जानने के लिए इस व्याख्यान को सुन सकते हैं - https://www.youtube.com/watch?v=YV_tu2Ucby4

(५) वर्णलक्षण

वर्ण लक्षण के अंतर्गत वर्ण की परिभाषा के साथ वर्ण के चार प्रकार - स्थायी, आरोही, अवरोही एवं संचारी वर्णों को परिभाषित किया गया है।

(६) अलंकार

क्रमानुसार स्वरों के संदर्भ को 'अलंकार' कहते हैं। स्थायी वर्ण के सात अलंकार बताए हैं- १. प्रसन्नादि, २. प्रसन्नान्त, ३. प्रसन्नायन्त, ४. प्रसन्नमध्य, ५. क्रमेरेचित्त, ६. प्रस्तार तथा ७. प्रसाद। इसके अतिरिक्त कई मुनियों द्वारा सात प्रकार के अलंकार बताए गए हैं,इन मुनियों में केवल हनुमान और शिव के मतों को ही पं अहोबल द्वारा विस्तार से विवरण किया गया है; वे हैं – १. भद्र, २. नन्द, ३. जित, ४. सोम, ५. ग्रीव, ६. भाल तथा ७. प्रकाशक।

इसके अतिरिक्त आरोही वर्ण के बारह एवं अवरोही वर्ण के बारह अलंकारों को पंडित अहोबल द्वारा वर्णित किया गया है, जिनमें से अधिकांश पंडित शारंगदेव द्वारा संगीत रत्नाकर में वर्णित किया गया है। ये क्रमशः विस्तीर्ण, निष्कर्ष, बिन्दु, अभ्युच्छ्रय, हसित, प्रेङ्खित, आक्षिप्त, संधि प्रच्छादन, उद्गीत, उद्वाहित, त्रिवर्ण तथा वेणी है। अवरोही वर्ण के बारह अलंकारों का केवल उल्लेख किया गया है वर्णन नहीं।

संचारी वर्ण के अंतर्गत २५ अलंकार का वर्णन किया है। इसके पश्चात गीतज्ञों के अनुसार सात अलंकार बताए गए है- इन्द्रनील, महाव्रज, निर्दोष, सीर, कोकिल, आवर्तक तथा सदानन्द, ये अलंकार तालबद्ध थे।

इन तालबद्ध अलंकारों के पश्चात राग अभ्यास के लिए रागोपयोगी अलंकारों का वर्णन किया है। ये पाँच अलंकार हैं- चक्राकार, जव, शंख, पद्माकर तथा वारिद।इस प्रकार पंडित अहोबल ने संगीत पारिजात के इस काण्ड में कुल ६८ प्रकार के अलंकारों का विस्तार से वर्णन किया है।

(७) जाति निरूपण

इस के अंतर्गत परंपरा से चली आ रही सात स्वरों से युक्त सात प्राचीन जातियों का निरूपण किया गया है, जो इस प्रकार हैं- षड्जा, ऋषभी, गान्धारी, मध्यमा, पंचमी, धैवती तथा नैषादी इनके विस्तार सहित विवरण गीत काण्ड के इस अंश में प्रस्तुत किया गया है । यद्यपि पं अहोबल ने पूर्व शास्त्रकारों के समान प्राचीन ग्रंथों के अनुरूप जातियों का वर्णन किया है परंतु अहोबल के समय तक जाति गायन की प्रथा पूरी तरह लुप्त हो चुकी थी ।

(८) गमक

संगीत पारिजात में गमकों का वर्णन परंपरागत रूप में नहीं किया गया। इसमें गमकों का तन्त्री वाद्यों के आधार पर व्याख्या किया गया। वे इस प्रकार हैं- १. च्याविता, २. कम्पित, ३. प्रत्याहत, ४. द्विराहत, ५. स्फुरित, ६. अनाहत, ७. तिरिप, ८. घर्षण, ९. विघर्षण, १०. पुनःस्वस्थान, ११. अग्रस्वस्थान, १२. कर्तरी, १३. नैम्न्य, १४. सुढालु एवं १५. हुम्फित व मुद्रा।

(९) स्वरस्थान लक्षण

स्वरस्थान लक्षण में, शुद्ध एवं विकृत स्वरों को रुद्र वीणा के तारों के आधार पर स्थापना करने की वैज्ञानिक एवं सुसंगठित पद्धति को प्रस्तुत किया गया है। पंडित अहोबल ने स्वर ज्ञानहीन नवीन शिक्षार्थी को स्वर ज्ञान कराने के उद्देश्य से रुद्र वीणा के तारों पर स्वरों की स्थापना के द्वारा स्वरों की अवस्थान को समझाया है। उन्होंने वीणा के तारों पर स्वर स्थान लक्षण बताते समय सात शुद्ध तथा पाँच विकृत स्वर यानी बारह स्वरों का वर्णन किया। पाँच विकृत स्वर इस प्रकार है- १) कोमल ऋषभ, २) तीव्र गांधार, ३) तीव्रतर मध्यम, ४) कोमल धैवत तथा ५) तीव्र निषाद।

(१०) मेल

स्वर स्थान लक्षण के पश्चात मेल की परिभाषा के साथ मेलों की संख्या का उल्लेख किया गया है। पंडित अहोबल ने सर्वप्रथम मेल की परिभाषा को बहुत ही सुस्पष्ट एवं वैज्ञानिक रूप से परिभाषित किया है–

मेलःस्वरसमूहःस्याद्रागव्यंजनशक्तिमान्।
श्लिष्टोच्चारणमेवात्र समुदायःप्रकीर्तितः।।३३०।।

अर्थात् – जो स्वर-समूह जिसमें राग उत्पन्न करने की शक्ति हो, उसे मेल कहते हैं। स्वर समूह के उच्चारण या प्रयोग में सामंजस्य या लोकरंजन करने की समता हो, उसे मेल की संज्ञा दी गई है।

इसके पश्चात मेल के तीन प्रकार बताए गए हैं - सात स्वरों के प्रयोग से ‘संपूर्ण‘ तथा छह स्वरों से ‘षाडव‘ एवं पाँच स्वरों के प्रयोग से ‘औडुव‘ कहलाते हैं। तीनों ग्रामों में षड्ज ग्राम को महत्व देते हुए षड्ज को मेल का प्राण-स्वरूप माना यानी मेल में षड्ज को वर्जित नहीं माना है।

इसके अतिरिक्त मेल के और दो प्रकार बताए हैं - शुद्ध स्वरों से युक्त मेल तथा विकृत स्वरों से युक्त मेल तथा इन मेलों की संख्या २१,३४० है।

(११) गीति

इस प्रकरण में गीति के संज्ञा को स्पष्ट करते हुए उनके लक्षणों को स्पष्ट किया गया है। यहाँ भी परंपरागत रूप से चली आ रही पाँच गीतियों का वर्णन किया गया है जो इस प्रकार हैं- शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, वेसरा तथा साधारणी।

(१२) राग प्रकरण

राग प्रकरण में पंडित अहोबल ने रागों को समय के अनुसार वर्गीकृत किया है। इसके पश्चात १२२ रागों के लक्षणों को अलग-अलग प्रस्तुत किया है। इन लक्षणों के अंतर्गत उदग्राह स्वर व मूर्च्छना स्वर, अंश, ग्रह, न्यास, वर्ण, राग के स्वरूप यानी चलन, गायन समय इत्यादि का उल्लेख किया गया है।स्वरस्थान प्रकरण में वर्णित सात शुद्ध तथा पाँच विकृत स्वरों के प्रयोग से १२२ रागों को राग प्रकरण में सम्मिलित किया है ।पंडित अहोबल का शुद्ध स्वर सप्तक वर्तमान के काफी राग के समान है ।तत्कालीन संगीत में प्रचलित मेल पद्धति को अधिक महत्व न देकर मूर्च्छना पद्धति को महत्व दिया है ।प्रत्येक राग की मूर्च्छना या उदग्राह स्वरों का वर्णन कर राग के लक्षणों को निर्धारित किया है ।कुछ पचास रागों को बारह मेलों में वर्गीकृत किया है ।

संगीत पारिजात में वर्णित मेलों के अन्तर्गत रागों का वर्णन

क्र. सं.	मेल	राग
१	शुद्ध मेल	सैंधवी, नीलाम्बरी, मालवश्री,मारु, मनोहर, मालवी
२	बिलावल	बिलावल, नट नारायण
३	गौरी	गौरी, मल्लारीललिता, बहुला, कौमारी,पूर्वी,मंगलकौशिक,रेवा, गौल, मालवगौल, आसावरी, पहाड़ी, नादरामक्रिया, त्रिवणी, सुरालय, अर्जुन,शर्वरी
४	भैरवी	भैरवी, सिंघरव, आनन्द भैरवी
५	शंकराभरण	शंकराभरण, वडहंस,सालंगनाट, छायानाट, कंकण, शंकरानन्द
६	मालव	मालव, दीपक, गुर्जरी
७	आभीरी	आभीरी नाट
८	कल्याण	कल्याण नाट, कोकिल, ऐरावत, राजधानी
९	वराटी	वराटी नाट
१०	श्री	श्री, सोरटी, मंजुघोषा
११	नाट्य मेल	सुमुद, चक्रधर
१२	मुखारी	शिववल्लभा, मुखारी

१३) प्रबंध प्रकरण

राग प्रकरण के पश्चात प्रबंधों को विस्तार से विवेचन किया गया है। प्रबंध के उपदान धातु और अंग, प्रबन्ध की पाँच जातियाँ तथा प्रबन्ध के भेदों के वर्णन के साथ ही सूड, आलि और विप्रकीर्ण तीन प्रकार के प्रबन्धों का विवेचन किया गया है।

लेखक ने पाँच धातु तथा छः अंगों से युक्त गानशैली को प्रबंध की संज्ञा दी है । ये पाँच धातु इसप्रकार है–१. उद्ग्राह,२. मेलापक ,३. ध्रुव ,४. अंतुर तथा ५. आभोग तथा धातुओं के पश्चात प्राचीन परम्परा को अपनाते हुए उन्होंने प्रबन्धों के छः अंगों को इस प्रकार से बताया है- १. पद, २. ताल, ३. स्वर, ४. पाट, ५. तेन तथा ६. बिरुद ।

इसके पश्चात तीनों प्रबंधों के प्रकारों की व्याख्या की गई है। सूड प्रबन्ध के आठ भेद, जैसे - एला, करण, ढेङ्की, झिम्बड़, लम्भ, रास तथा एक ताली को भली प्रकार से वर्णित किया गया है। आलि संश्रय प्रबन्ध के अंतर्गत वर्ण, वर्णस्वर, गद्य, कैवाड़, अंकचारिणी, कंद, तुरगलीला, गजलीला, द्विपदी, चक्रवाल, स्वरार्थ, गाथा, क्रौचपद, कलहंस, द्विपथक, आर्या, ध्वनिकुट्टिनी, घट, वृत्त, मातृका, तोटक, रागमिश्रक, तालार्णव तथा पंचताल का समावेश किया गया है तथा इनकी विस्तृत चर्चा की गई है। विप्रकीर्ण प्रबन्ध के अंतर्गत ३६ प्रबन्धों का संकलन किया गया है, जो इस प्रकार हैं - श्रीरंग, श्रीविलास, पंचभंगी, पंचानन, उमातिलक, विजय, वस्तु, त्रिपदी, चतुष्पदी, षट्पदी, सिंहलीला, हंसलीला, चतुर्मुख, सुदर्शन, त्रिभंगी, त्रिपथ, दंडक, संपट, कंदुक, चर्या, चच्चरी, हर्षवर्धन, श्रीबर्धन, स्वरांग, हरिविलासक, राहडी, मंगलाचार, वदन, पद्धडी, धवल, मंगल, लोली, वीरश्री, ढोल्लरी, उर्वी तथा दन्ती।

१४) गीत प्रकरण

गीत प्रकरण के अंतर्गत तत्कालीन प्रचलित गायन शैलियों का वर्णन किया गया है, जो निम्नवत है- बिन्दु, दरू, अष्टपदी और ध्रुवपद।लेखक के अनुसारद्राविड़ भाषाओं में सभी तालों में निबद्ध रचना, जिसे केवल द्रुत गति में गायन किया जा सकता है साथ ही जो श्रोता को सुखदायक प्रतीत होता है, 'विंदु' गायन शैली है,तैलंग या तेलगु भाषा से उत्पन्न द्रुतगति से युक्त गायन शैली को 'दरु',जिस गायन शैली में आठ पद हो, त्रिपुट ताल में निबद्ध, सभी भाषाओं से युक्त तथा घंटा के साथ या सहयोग से गाया जाएवह 'अष्टपदी' कहलाता है तथा उत्तरी भाषाओं में निबद्ध रचना ध्रुवपद है ।

अंत में गीत के गुण-दोष, वाग्गेयकार लक्षण तथा गायक के गुण-दोष के साथ ही संगीत पारिजात के राग गीत काण्ड का समापन किया गया है।

वाद्य-ताल काण्ड

संगीत पारिजात के द्वितीय काण्ड - वाद्य-ताल काण्ड के दो भाग अथवा अध्याय हैं- प्रथम भाग वाद्याध्याय और द्वितीय भाग तालाध्याय।

१) वाद्याध्याय

पंडित अहोबल ने परंपरा के अनुसार वाद्यों के चार प्रकार बताए हैं – १. तत, २. आनद्ध, ३. सुषिर और ४. घन। इसके पश्चात प्रत्येक वर्ग के वाद्यों के लक्षणों को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया है।

ततवाद्य –

संगीत पारिजात में तत वाद्यों के अनेक प्रकार बताए हैं – १. रूद्रवीणा, २. ब्रह्मवीणा, ३. तंबूर, ४. स्वरमण्डल, ५. पिनाकी, ६. किन्नरी, ७. दण्डी एवं ८. रावणहस्त। इसके पश्चात वीणावादन के लक्षण, वीणा के मेलन विधि, वादक के प्रकार एवं उक्त वाद्यों के वादन विधि का भी विस्तार से विवरण दिया गया है। इनमें से आज रुद्रवीणा तथा स्वरमंडल आज भी उसी रूप में प्रचलित है । निबद्ध तंबूर से वर्तमान में सितार का अवतरण हुआ है, तथा तंबूर का विकसित रूप आज का तानपुरा है।

आनद्ध वाद्य–

आनद्ध वाद्यों के अंतर्गत आठ वाद्यों- मृदंग, दुन्दुभि, भेरी, रञ्जा, डमरू, पटह, चक्रवाद्य तथा हुडुक्कु का समावेश किया। इसके पश्चात इन वाद्यों के लक्षण, वादन विधि एवं वादक के लक्षणों का विस्तार से विवरण किया है। ध्यान देने योग्य बात है कि पं अहोबल के समय तक तबले का प्रचलन नहीं हुआ होगा क्योंकि उन्होंने इस वाद्य का उल्लेख नहीं किया।

इन दोनों वर्गों के वाद्यों के अतिरिक्त पंडित अहोबल एक अन्य नवीन वर्ग के वाद्यों का भी वर्णन किया है, जिसमें तत तथा आनद्ध वाद्यों के लक्षण निहित हैं। इस वर्ग के अंतर्गत तीन वाद्यों का समावेश किया गया है – १.ढक्का, २.रवाब एवं ३.करचक्र।

सुषिरवाद्य–

संगीत पारिजात में सुषिर वाद्य के अंतर्गत सुनादी, मुरली, पावा, श्रृंग, नागसर, कहली, मुखवीणा, वक्री, तुंदकिनी, चंगु, शंख, पत्रिका और स्वरसागर वाद्यों का उल्लेख किया है। इन वाद्यों के लक्षणों का भी पंडित अहोबल ने विस्तार से वर्णन किया है। इन में से सुनादी वर्तमान में शहनाई के नाम से, पावा अलगोजा या सतारा नाम से और चंगु मोरचंग के नाम प्रचलित है।

घनवाद्य–

पंडित अहोबल ने संगीत पारिजात के घन वाद्यों के अंतर्गत ताल, झल्लरी, घंटा, जयघंटा, घट, जलयन्त्र, क्षुद्रघंटा, कल्पतरु तथा काष्ठ ताल का वर्णन करते हैं। इन में से इस प्रकार वाद्य ताल काण्ड के इस भाग में कुछ ऐसे वाद्यों का समावेश हुआ है, जिनका प्रयोग आधुनिक समय में देखा जा सकता है, जैसे जलयंत्र या जल तरंग, झल्लरी या झाँझआदि।

पंडित अहोबल द्वारा वर्णित वाद्यों का वर्तमान हिन्दुस्तानी संगीत, कर्नाटक संगीत, लोक संगीत तथा पाश्चात्य संगीत में नवीन नामों या परिवर्तित रूप में प्राप्त हैं जो इस प्रकार हैं -

संगीत पारिजात वर्णित वाद्य	वाद्यों के आधुनिक नाम
रुद्र वीणा	रुद्र वीणा
अनिबद्ध तंबूर	तानपूरा
निबद्ध तंबूर	सितार
स्वरमंडल	स्वरमंडल
मृदंग	पखावज

दुंदुभि	नगाड़ा
पटह	ढोलक
चक्रवाद्य	दक्षिण भारत में खंजीरा या गंजीरा
हुड्‌कका	उत्तराखंड में हुरुक या केरल में उडुक्का
ढक्का	बंगाल का लोक वाद्य आनंदलहरी या खमक, राजस्थान में भुपंग तथा पंजाब में बुगचु
रबाब	परिवर्तित रूप सरोद
करचक्र	डफ़ली
सुनादी	शहनाई
पावा	अलगोजा या सतारा
शृंग	राजस्थान, महाराष्ट्र, दक्षिण भारत तथा नेपाल का लोक वाद्य
नागसर	राजस्थानी लोक वाद्य पुंगी
बक्री	नागफनी या बकिया
चंगु	मुखचंग या मोरचंग या Jaws Harp
ताल	एक प्रकार का मंजीरा
झल्लरी	झांझ या झालर
जयघण्टा	पूर्व एशिया में गोंग
घट	पंजाब घड़ा या गागर एवं दक्षिण भारत में घटम
जलयंत्र	जलतरंग
क्षुद्रघंटिका	घुँघरू

(२) तालाध्याय

इसके पश्चात द्वितीय काण्ड का शेष अध्याय तालाध्याय को लेखक ने ग्रन्थ में सम्मिलित किया है । इसमें परंपराओं को आधार मानकर तालाध्याय में ताल को परिभाषित करते हुए ताल के दस प्राणों का भी विस्तार से वर्णन किया गया है - १. काल,२. मार्ग, ३.क्रिया, ४. अंग, ५. ग्रह, ६.जाति, ७. कला, ८. लय, ९. यति, १०. प्रस्तार। प्रस्तार का वर्णन करते समय देशी ताल के प्रस्तारों का विषद वर्णन किया गया है।

पंडित अहोबल ने तालाध्याय में तालों को दो भेदों व प्रकारों में विभाजित किया है- मार्ग ताल एवं देशी ताल। मार्ग एवं देशी तालों को परिभाषित करने के साथ-साथ उनके पाटाक्षरों को भी स्पष्ट रूप से समझाने का प्रयास किया गया है।

तालाध्याय में प्राप्त मार्ग ताल - १)चंचत्पुट (भरत एवं शारंगदेव आदि के अनुसार चच्चत्पुट), २)चाचपुट,३)षट्पितापुत्रक, ४)संपक्केष्ट और ५)उद्धट है। इसके पश्चात् १५९ देशी तालों का नामोल्लेख किया है।उसके पश्चात सप्त-सूडादि तालों के अंतर्गत 'ध्रुव के सोलह भेद एवं मंठ के

छत्तीस भेद बताए हैं।इन तालों के अतिरिक्त दंती, महाव्याघ्र, भास्करादिग्रह, विजय, कामधेनु तथा पुष्पबाण आदि तालों के भी वर्णन किया गया है।

आज के संदर्भ में संगीत पारिजात

संगीत पारिजात में १७वीं शताब्दी में संगीत के सैद्धांतिक पहलू को इतनी सूक्ष्मता से सँवारा गया है कि आज इस ज्ञान रूपी मोती की चमक में और भी निखार आया है। संगीत पारिजात को आधार बनाकर सभी विद्वानों ने वीणा पर स्वरों की स्थापना की है। रागों तथा वीणा पर पाँच विकृत स्वरों को स्थापित किया है। षड्ज ग्राम को अधिक महत्व देकर सा से सभी रागों को प्रारंभ करने की प्रथा संगीत पारिजात से ही प्रारंभ हुई है। संगीत पारिजात में कई नवीन वाद्यों और तालों का उल्लेख किया गया है, जिनका प्रयोग आज भी भारतीय संगीत में पूर्वरूप अथवा नवीन रूप में विद्यमान है। इस ग्रंथ के अध्ययन से तत्कालीन संगीत की स्पष्ट छवि प्राप्त होती है, जिससे वर्तमान संगीत के सैद्धांतिक पक्ष का सूक्ष्म विवेचन करना संभव हो पाता है। इस प्रकार संगीत पारिजात संगीत की प्रवृत्तियों एवं नवीन परिवर्तनों को जानने का अमूल्य स्रोत है।

3.8 सारांश

- संगीत पारिजात के अनुसार श्रीकृष्ण पंडित के पुत्र पंडित अहोबल इस ग्रंथ के प्रणेता हैं।
- हाल के कुछ शोध के आधार पर इस ग्रंथ का रचनाकाल १६२० से १६५० ई० के बीच के समय को निर्धारित किया गया है।
- वर्तमान में पुणे के श्री गोंधलेकर जी के द्वारा प्रकाशित संस्करण में संगीत पारिजात के केवल दो ही काण्ड प्राप्त होते है – राग गीत काण्ड एवं वाद्य-ताल काण्ड |
- राग गीत काण्ड के अंतर्गत स्वर प्रकरण, ग्राम लक्षण, मूर्च्छना प्रकरण, मूर्च्छना प्रस्तार प्रकरण, वर्ण लक्षण, अलंकार, जाति निरूपण, गमक, स्वरस्थान लक्षण, मेल, गीति, राग प्रकरण, प्रबंध, प्रबंधों के अंतर्गत कुछ नए प्रबंध जैसे बिन्दु, दरु, अष्टपदी और ध्रुवपद, गीत के गुण-दोष, वाग्गेयकार के लक्षण एवं गायन के गुण-दोष की चर्चा की है |
- लेखक के अनुसार सात शुद्ध तथा बाईस विकृत स्वरों की स्थापना की यानी कुल २९ स्वर हैं ।इन में से बाईस विकृत स्वरों को तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम, अतितीव्रतम, कोमल, पूर्व, साधारण तथा मृदु के नामों से संबोधित किया है।
- लेखक ने पूर्व परंपरा को अपनाते हुए ग्रंथ में ग्राम के तीन प्रकार बताया है परंतु प्रचलन में केवलषड्ज तथा मध्यम ग्राम के अस्तित्व को स्वीकार किया है ।
- पंडित अहोबल ने ६८ प्रकार केअलंकारों को संगीत पारिजात में सम्मिलित किया है।गीतज्ञों के अनुसार सात प्रकार के अलंकार थे - इन्द्रनील, महाव्रज, निर्दोष, सीर, कोकिल, आवर्तक तथा सदानन्द, ये अलंकार तालबद्ध थे ।राग अभ्यास के लिए पाँच प्रकार के अलंकार हैं- चक्राकार, जव, शंख, पद्माकर तथा वारिद ।
- संगीत पारिजात में उस समय में प्रचलित पंद्रह गमकों (जो तंत्री वाद्यों पर आधारित थे) की चर्चा की गई है -१. च्यावित्ता, २. कम्पित, ३. प्रत्याहत, ४. द्विराहत, ५. स्फुरित, ६. अनाहत, ७. तिरिप, ८. घर्षण, ९. विघर्षण, १०. पुनःस्वस्थान, ११. अग्रस्वस्थान, १२.

कर्तरी, १३. नैम्न्य, १४. सुढालु एवं १५. हुम्फित व मुद्रा।

- पंडित अहोबल ने स्वर ज्ञानहीन नवीन शिक्षार्थी को स्वर ज्ञान कराने के उद्देश्य से रुद्र वीणा के तारों पर स्वरों की स्थापना के द्वारा स्वरों की अवस्थान को स्वर स्थान लक्षण में बताते समय सात शुद्ध तथा पाँच विकृत स्वर यानी बारह स्वरों का वर्णन किया। पाँच विकृत स्वर इस प्रकार है- १) कोमल ऋषभ, २) तीव्र गांधार, ३) तीव्रतर मध्यम, ४) कोमल धैवत तथा ५) तीव्र निषाद।
- पंडित अहोबल ने सर्वप्रथम मेल की परिभाषा को बहुत ही सुस्पष्ट एवं वैज्ञानिक रूप बताते हुए मेल के तीन प्रकार बताया है - सात स्वरों के प्रयोग से 'संपूर्ण' तथा छह स्वरों से 'षाडव' एवं पाँच स्वरों के प्रयोग से 'औडुव' कहलाते हैं।इस के अतिरिक्त उन्होंने मेल के और दो प्रकार बताए हैं - शुद्ध स्वरों से युक्त मेल तथा विकृत स्वरों से युक्त मेल तथा इन मेलों की कुल संख्या २१,३४० थी।
- १२२ रागों को राग प्रकरण में सम्मिलित किया है।
- पंडित अहोबल का शुद्ध स्वर सप्तक वर्तमान के काफी राग के समान है।
- उन्होंने तत्कालीन संगीत में प्रचलित मेल पद्धति को अधिक महत्व न देकर मूर्च्छना पद्धति को महत्व दिया है।
- लेखक ने पाँच धातु तथा छः अंगों से युक्त गानशैली को प्रबंध की संज्ञा दी है। ये पाँच धातुएँ इसप्रकार है–१. उद्ग्राह,२. मेलापक ,३. ध्रुव ,४. अंतुर तथा ५. आभोग इस के अतिरिक्त प्रबन्धों के छः अंगों को इस प्रकार से बताया है- १. पद, २. ताल, ३. स्वर, ४. पाट, ५. तेन तथा ६. बिरुद।
- गीत प्रकरण के अंतर्गत तत्कालीन प्रचलित गायन शैलियों में बिन्दु, दरू, अष्टपदी और ध्रुवपद को वर्णन किया है।
- संगीत पारिजात के द्वितीय काण्ड - वाद्य-ताल काण्ड के दो भाग अथवा अध्याय हैं- प्रथम भाग वाद्याध्याय और द्वितीय भाग तालाध्याय।
- पंडित अहोबल ने परंपरा के अनुसार वाद्यों के चार प्रकार बताए हैं – १. तत, २. आनद्ध, ३. सुषिर और ४. घन। इसके अतिरिक्त पंडित अहोबल एक अन्य नवीन वर्ग के वाद्यों का भी वर्णन किया है, जिसमें तत तथा आनद्ध वाद्यों के लक्षण सम्मिलित हैं। वे तीन वाद्य इस प्रकार है – १.ढक्का, २.रवाब एवं ३.करचक्र।
- पंडित अहोबल ने तालाध्याय में तालों को दो भेदों व प्रकारों में विभाजित किया है- मार्ग ताल एवं देशी तालतथा ग्रंथ में तत्कालीन प्रचलित १५९ देशी तालों को सम्मिलित किया है|
- संगीत पारिजात में कई नवीन वाद्यों और तालों का उल्लेख किया गया है, जिनका प्रयोग आज भी भारतीय संगीत में पूर्वरूप अथवा नवीन रूप में विद्यमान है।

3.9 अभ्यास प्रश्नावली

1. आज के संदर्भ में संगीत पारिजातके महत्व पर प्रकाश डालते हुए ग्रन्थ का विशद विवरण कीजिए |
2. निम्नलिखित वाक्यों के शून्य स्थान को पूरा करे -

- पंडित अहोबल के पिता का नाम .... था|
- इस ग्रंथ का रचनाकाल .... के समय को निर्धारित किया गया है।
- वर्तमान में संगीत पारिजात के केवल दो काण्ड - .... एवं ....प्राप्त होते है|
- वे स्वर जो अपने स्थान से अगले श्रुतियों पर अवस्थित हो जातें है, उन्हें सामूहिक रूप से .... स्वर कहते हैं।
- जब कोई शुद्ध स्वर अपने नियत श्रुति के अतिरिक्त किसी अन्य श्रुति को ग्रहण करता है, तब वही स्वर .... कहलाता है।
- राग में अन्य स्वरों की अपेक्षा जिस स्वर का अधिक प्रयोग किया जाता है, उसे .... कहा जाता है।
- जो स्वर राग में रक्ति विच्छेद यानी राग को नष्ट करने का कारण बने, उसे .... कहते हैं।
- क्रमानुसार स्वरों के संदर्भ को .... कहते हैं।
- जो स्वर-समूह जिसमें राग उत्पन्न करने की शक्ति हो, उसे .... कहते हैं।
- मेलों के तीन प्रकार ………….. , …………… और .... है।
- द्राविड़ भाषाओं में सभी तालों में निबद्ध रचना, जिसे केवल द्रुत गति में गायन किया जा सकता है साथ ही जो श्रोता को सुखदायक प्रतीत होता है, ... कहलाता है|
- तत वाद्यों के अंतर्गत .... वीणाओं का समावेश किया है|
- निबद्ध तंबूर का विकसित रूप आज का .... तथा तंबूर का विकसित रूप आज का .... है।
- सुनादी वर्तमान में .... के नाम से प्रसिद्ध है|
- सप्त-सूडादि तालों के अंतर्गत ‘ध्रुव के .... भेद एवं मंठ के .... भेद बताए हैं।

संगीत पारिजात ग्रंथ के उपलब्ध प्रतियाँ और अनुवाद

- पंडित विरचित, श्री अहोबल, संगीतपरिजातः, श्रीजीवनन्दविद्यासागरभट्टाचार्येण, कलिकातानगर्य्यां सरस्वतीयन्त्रे मुद्रितः, १८८४
- अहोबल, पंडित , सङ्गीतपरिजातः, श्रीधर गोंधलेकर, पुणे नगर, स्वमुद्रित, 1897

- पंडित, श्री अहोबल, संगीत परिजातः ,सङ्गीत कलाकोविद पं कलिंद जी , संगीत कार्यालय हाथरस, प्रभूलाल गर्ग, तृतीय संस्करण , सन 1971
- प्रतापसिंह देवकृत, जयपुराधीश महाराजा सवाई, संगीतसार, भाग ६ वा तालाध्याय, प्रकाशक- बलवंत त्रियंबक सहस्रबुद्धि, सेक्रेटरी, गायन समाज, पुणे, मुद्रण- पुना आर्यभूषण प्रेस, १९१२
- Srinivasa, Ragattvavivodha- A Work on Indian Music by Srinivasa, Ed. Vibhukumar S. Desai, Published with financial help of the Sangeet Natak Akademi, New Delhi, Oriental Institute, Baroda, 1956
- अहोबलकृत, पंडितप्रवर, संगीत पारिजात, भाष्यकार –श्री शचीन्द्रनाथ मित्र, एम.सि.सरकार एण्ड सॉनस प्राइवेट लिमिटेड, कोलकाता -१२, अखंड संस्करण, २५ नवम्बर १९६५ (Google Archieve)**(Bengali book)**
- देवांगन, तुलसी, भारतीय संगीत शास्त्र, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, रविन्द्रनाथ ठाकुर मार्ग, बाणगंगा, भोपाल - 462003, प्रथम संस्करण-1997
- भातखंडे , पं० विष्णुनारायण, संगीत पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन, अनुवादक- भागवतशरण शर्मा, संगीत कार्यालय, हाथरस-204101(उ.प्र.), जनवरी 2000
- श्रीवास्तव, डॉ० सुमानलता, सङ्गीताधिराज हृदयनारायणदेव हृदयकौतुकम् • हृदयप्रकाश, विद्यानिधि प्रकाशन, डी-10/1061 (समीप श्री महागौरी मंदिर) खजूरी खास, दिल्ली-110094, संस्करण-2008
- दासगुप्त, प्रो० लिपिका, भारतीय संगीतशास्त्र ग्रंथ परम्परा : एक अध्ययन, संकलन सम्पादन एवं लेखन – प्रो० लिपिका दासगुप्त, प्रकाशक – प्रेस एण्ड पुब्लिकेशन सेल काशी हिन्दु विश्वविद्यालय, वाराणसी -२२१००५, मुद्रक – महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी, 2009
- सिंह ‘काव्य’, डॉ० लावण्य कीर्ति,भारतीय संगीत ग्रन्थ (वर्ण्य-विषय विश्लेषण), कनिष्क पुब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली -११०००२, संस्करण -२०१४